उल्लास और उमंगों से भर देने
वाली अपने ढंग की एकमात्र पुस्तक

डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

भावनाओं के चमत्कार

हिन्द पॉकेट बुक्स

भावनाओं के चमत्कार

आपका जीवन चाहे जितना अंधकारपूर्ण रहा हो; असफलताओं ने आपके जीवन को कितना ही डावांडोल कर दिया हो और आप जीवन से कितने ही निराश हो चुके हों; परन्तु आप बिल्कुल चिन्ता न कीजिए। असल में जीना एक कला है, जिसका आपके विचारों से सीधा सम्बन्ध है। ज्योंही आप स्वस्थ ढंग से सोचने लगेंगे, आपकी जीवन-बगिया में स्थिरता, सहनशीलता, उत्साह और आशा के फूल खिल उठेंगे और आपका जीवन उत्साहपूर्ण हो जाएगा। यह पुस्तक इस दिशा में आपका मार्गदर्शन करेगी।

भावनाओं के चमत्कार आपके जाने-माने लेखक डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा की अपने ढंग की एकमात्र पुस्तक है, जिसे स्वयं लेखक ने अपनी सवश्रेष्ठ रचना कहा है। इसमें उन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए आधुनिक शोधों का बड़े ही सहज, सरल और मनोरंजक ढंग से वर्णन किया है। युवक, युवतियों, प्रौढ़ एवं वृद्ध सभी के लिए समान रूप से उपयोगी पुस्तक!

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

भावनाओं के चमत्कार

(आत्म विकास)

संस्करण : 1993

प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095

लेजरटाइपसेटिंग : स्टार लेजरटाइपसेटर्स, दिल्ली-110060

मुद्रक : पशुपति प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा दिल्ली-32

BHAVNAON KE CHAMATKAR
(Self Help)
Dr. LAKSHMINARAYAN SHARMA

दो शब्द

अपनी यह रचना पाठकों को भेंट करते हुए मुझे बहुत हर्ष हो रहा है। मैं इसे अपनी प्रथम सर्वोत्कृष्ट रचना मानता हूं क्योंकि पिछली सभी पुस्तकों में मैंने जीवन और स्वास्थ्य के कुछ विशिष्ट पक्ष को ही लिया है; परन्तु प्रस्तुत रचना में जीवन और स्वास्थ्य के इतने अधिक पक्ष सिमट आए हैं कि जिनसे यह अनायास ही अधिकतम उपयोगी बन गई है।

पुस्तक का विषय मनोविज्ञान है; लेकिन इसमें रूखे-सूखे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की विवेचना नहीं है अपितु रोजमर्रा के जीवन में व्यवहृत होने वाले मनोविज्ञान का दिलचस्प वर्णन है।

जीना एक कला है और उस कला को सीखने के कुछ मनोवैज्ञानिक गुर भी हैं। मैंने उन गुरों को समझाने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया है। दरअसल मनोविज्ञान के क्षेत्र में भावनाओं को लेकर एक नया अध्याय खुला है जिससे जीवन के अनेक नये तथ्य और रहस्य प्रकाश में आए हैं। भावनाएं हमारे जीवन पर पर छाई रहती हैं; जीवन को सही या गलत मोड़ देने में भावनाओं का बड़ा हाथ रहता है। अतः भावनाओं का नियन्त्रण ज़िन्दगी की एक बड़ी उपलब्धि होती है। गीता का कर्म-सिद्धान्त भी और कुछ नहीं भावनाओं का ही तो खेल है। इस दिलचस्प तथ्य को समझिए,पढ़िए और जीवन में उतारिए-तो आप देखेंगे कि अनेक जटिल समस्याएं, जिन्हें लोग पहाड़ के समान देखते हैं, वे वस्तुतः राई के बराबर भी नहीं हैं।

मुझे विश्वास है कि मैं अपने पाठकों को इस रचना में कुछ नवीनता भेंट कर पा रहा हूं– जो जीवन में रस घोल सकती है।

स्वास्थ्य वाटिका
सीलमपुर (ओल्ड)
दिल्ली-31

विनीत
डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा

क्रम

भावनाओं के चमत्कार

1. आपका मिज़ाज कैसा है ?

यदि आपने पिछले वर्ष नियमपूर्वक अपनी डायरी लिखी है और वर्ष के अन्त में आपसे पूछा जाए कि डायरी के आधार पर आपका यह वर्ष कैसा रहा ? आपका कितना समय बेफिक्री, खुशमिज़ाजी, मौज, मस्ती और आनन्द से बीता ? और कितना समय मन की ऊहापोह, चिन्ताओं, कठिनाइयों, परेशानियों और शारीरिक कष्टों में बीता ? तो शायद पूरा लेखा-जोखा निकालकर यही निष्कर्ष आएगा कि पूरे-पूरे सप्ताह और महीने भर की उधेड़बुन, सोच-विचार, अशान्ति, चिन्ता और किंकर्तव्यविमूढ़ता में ही निकल गए। पूरे वर्ष-भर स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। शान्ति, सन्तोष और आनन्दानुभूति के क्षण या तो आए ही नहीं, और अगर आए भी तो उनकी आपको याद नहीं पड़ती।

वस्तुतः यह स्थिति केवल आपकी ही नहीं हैं; बल्कि प्रत्येक सामान्य व्यक्ति के जीवन का लेखा-जोखा इससे भिन्न नहीं है। फिर यह बात भी नहीं है कि यह स्थिति सिर्फ आज ही पैदा हुई हो। वरन् युग-युगान्तर से लोग इन्हीं हालात में जीते आ रहे हैं। जीवन का आनन्द शायद उनके लिए शब्दकोश में लिखा एक शब्द-भर रह गया है। ज़िन्दगी का लुत्फ उन्होंने कभी नहीं उठाया। कदाचित् ऐसे लोगों ने ही जीवन को 'दुःखों की एक गठरी' का फतवा दे दिया है।

एक विचारक ने कहा है–**"इस पृथ्वी पर जीवन के आनन्द का अनुभव और उपभोग न कर पाना, मनुष्य-जाति की एक बड़ी असफलता रही है।"**

अस्वस्थ मन या अस्वस्थ शरीर (!)

जब हम यह कहते हैं कि आज 'मूड' ठीक नहीं है या मन स्वस्थ नहीं है; तब वस्तुतः हमारा शरीर अस्वस्थ होता है। मूड ठीक न होने अथवा मन अस्वस्थ होने का प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। मन का चूंकि कोई स्थूल अस्तित्व नहीं होता, अतः शरीर के माध्यम से ही हम मन की अस्वस्थता की अनुभूति ग्रहण करते हैं। शरीर का यह अस्वास्थ्यकर भाव चाहे जितने सूक्ष्म रूप में हो, वह शरीर को स्वाभाविक स्वास्थ्य से दूर कर देता है। और इस सबके मूल में भावनाएं होती हैं। दुखकारी भावनाएं शरीर को अस्वस्थ कर देती हैं और सुखकारी भावनाएं शरीर को प्रसन्नताभरा स्वास्थ्य देती हैं।

कर्म और भावनाएं

वस्तुतः भावनाओं की यह आंखमिचौनी मानव-जीवन का एक बड़ा रहस्यमय पक्ष है। कर्म-सिद्धान्त भी और कुछ नहीं भावनाओं का ही खेल हैं। 'क्रोध' एक बुरा कर्म है। बुरे कर्म का फल भी निश्चित रूप से बुरा होगा– इसीलिए क्रोध से शरीर में अनावश्यक उत्तेजना, थकावट और भारीपन आ जाता है जिसे हम शरीर के माध्यम से भोगते हैं। प्रेम करना एक सत्कर्म है जिसके फलस्वरूप हम शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति और उठान अनुभव करते हैं।

मनोविज्ञान ने हमारे जीवन में भावनाओं का एक नया अध्याय खोल दिया है, जो स्वयं को समझने में व्यक्ति की भारी मदद करता है।

वहम : रोगी का या डाक्टर का

डाक्टर के पास एक रोगी आता है और कहता है–"तबियत ठीक नहीं रहती; कभी सिर में, कमर में दर्द हो जाता है; थकावट बराबर बनी रहती है; भूख नहीं लगती; शरीर गिरा-पड़ा रहता है; मन में उत्साह और उठान नहीं है।"

डाक्टर रोगी की पूरी परीक्षा करता है–दिल, फेफड़ें, पेट, जिगर, आंखें जीभ आदि; लेकिन उसे कहीं कोई रोग नहीं मिलता। वह रोगी से कहता है –"आपके शरीर में कोई रोग नहीं है। आप 'वहम' के शिकार मालूम पड़ते हैं।"

डाक्टर के इस निदान से रोगी सन्तुष्ट नहीं होता। वह यह समझता है कि डाक्टर मर्ज को नहीं पकड़ पाया। ऐसे रोगी जब कई डाक्टरों, वैद्यों के दरवाजे खटखटा

लेते हैं और उन्हें कहीं कोई आराम नहीं मिलता, तो 'भाग्य में ही कष्ट लिखा है, कर्मों के भोग हैं, ऐसा समझकर बैठ जाते हैं।

ऐसे कष्टों का कारण भावनाएं

ऐसे केसों में रोगी और डाक्टर दोनों ही अपनी-अपनी जगह ठीक होते है। रोगी के शरीर में न तो कोई कीटाणु-संक्रामण होता है और न दिल, फेफड़े, जिगर जैसे अंगों का काम खराब होता है। इसलिए डाक्टर कहता है कि आपके शरीर में कोई रोग नहीं है। उधर रोगी का यह समझना ठीक होता है कि ये सब लक्षण बिना किसी कारण के नहीं है। 'वहम' की बात कहने से डाक्टर का मतलब होता है, भावनाओं से उत्पन्न लक्षण'। किन्तु सामान्य व्यक्ति अभी भावनाओं के रहस्य को नहीं समझ पाए हैं, इसीलिए वे इन लक्षणों को कर्मों के भोग या भाग्य के कष्ट मान लेते हैं।

इस क्षेत्र के सर्वेक्षणों से यह तथ्य प्रकाश में आए हैं कि आज संसार के कुल रोगियों में आधी संख्या भावनाजन्य रोगियों की है। हमारे स्वास्थ्य-विहार में जितने रोगियों के पत्र आते हैं उनमें से 75 प्रतिशत से अधिक रोगी भावनाजन्य लक्षणों से पीड़ित होते है।

जैसा कि हम पीछे के पृष्ठों में लिख आए हैं, कि सामान्य व्यक्ति भावनाजन्य रोगों को नहीं समझतें, वे रोगी शारीरिक लक्षणों की चिकित्सा के लिए ही आते हैं। किन्तु ऐसे रोगी तब आश्चर्यचकित रह जाते हैं जब डाक्क्टर उनके मन का पर्दा हटाकर उन्हें यह बताता है कि उनके सिर या कमर का दर्द किसी रोग का कारण नहीं वरन् उनकी गलत मानसिक स्थिति या भावनाओं के कारण है। आमतौर पर लोग भावनाओं को अथवा अस्वस्थ मानसिक स्थिति को बहुत हल्के तौर पर लेते हैं। वे डाक्टर से भूख की कमी, कमजोरी, स्मरण शक्ति का ह्रास, थकावट, दिमाग के सूनेपन आदि की शिकायत करते हैं; लेकिन जब डाक्टर उनसे प्रश्न करता है कि 'आपको कोई मानसिक उलझन, चिन्ता, परेशानी आदि तो नहीं रहती है ?' तब उनका यह उत्तर होता है कि 'ऐसी कोई खास बात या चिन्ता तो नहीं है। लेकिन इस जीवन में ऐसा कौन है, जो चिन्ता और परेशानीयों से मुक्त रह सकता है ? ये बातें तो लगी ही रहती है।' और इसका अर्थ यह होता हैं कि आज के सामान्य व्यक्तियों ने मानसिक परेशानियों को जीवन का एक स्वाभाविक अंग मान लिया है। जब कि वास्तव में उनकी यह अस्वस्थ मानसिक स्थिति ही उनके रोग की जड़ होती है।

इनकी व्यापकता के कारण (!)

मनोवैज्ञानिकों ने भावनाजन्य रोगों का एक ही कारण माना है–'अस्वस्थ चिन्तन'। अस्वस्थ चिन्तन कुछ कठिन शब्द है। इसके लिए सरल शब्द हो सकते हैं–जैसे गलत विचारधारा' या 'अपरिपक्वता' की बातें अथवा 'बचपने के आचरण'। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक शिण्डलर ने लिखा है– "जीवन में लोग सदा से ही ऐसे आचरण करते चले आए हैं जो अनेक दृष्टियों से तर्कसंगत और युक्तियुक्त (लाजिकल) नहीं होते। ऐसे आचरण व्यक्ति की अपरिपक्वता के सूचक होते हैं और यह अपरिपक्वता ही मुख्य रूप से भावनाजन्य रोगों का कारण होती है।"

इस क्षेत्र की एक बड़ी विडम्बना यह है कि व्यक्ति के पास गम्भीरता या परिपक्वता सीखने का कोई साधन नहीं होता। इसलिए किसी को दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।

व्यक्ति में विचार-प्रौढ़ता लाने की ओर समाज ने कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया है। न तो स्कूलों में या कालेजों में इसकी कोई शिक्षा दी जाती हैं, और न व्यक्ति परिवार के मध्य रहकर ही गम्भीरता सीख पाता है, वरन् पारिवारिक वातावरण तो इसके प्रतिकूल ही बैठता है। परिवार में रहकर व्यक्ति को हमेशा ही अजीब, नई और अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। और ये परिस्थितियां उसे बचपने का आचरण करने के लिए मजबूर कर देती हैं। फलतः परिवार में रहकर व्यक्ति 'भावनाजन्य रोगों' का अधिक शिकार बनता है, क्योंकि वह 'विचारप्रौढ़' नहीं होता है।

विचार-प्रौढ़ता क्या है (?)

विचार-प्रौढ़ता को हम 'समझदारी', 'गम्भीरता' अथवा 'सुलझे हुए विचार' भी कह सकते हैं। 'समझदार' या 'विचारप्रौढ़' वही व्यक्ति कहा जाता है जो जीवन के अधिक से अधिक पक्षों पर अपने सुलझे हुए विचार रखता हो।

कोई व्यक्ति विद्वान हो सकता है, कलापारखी या अच्छा कलाकार हो सकता है, चतुर और पैनी दृष्टि वाला हो सकता है, उद्यमी और परिश्रमशील भी हो सकता है, लेकिन इन सभी गुणों के होते हुए यह जरूरी नही है कि वह 'विचारप्रौढ़' भी हो।

'विचारप्रौढ़ता' को न तो किसी शब्दकोश में ढूंढा जा सकता है और न इसकी कोई नपी-तुली परिभाषा ही की जा सकती है। किसी भी घटना या परिस्थिति के

प्रति व्यक्ति का रूख या धारणा ही उसे 'विचारप्रौढ़' या 'नासमझ' बनाती है।

अच्छी-बुरी घटनाएं और परिस्थितियां हमेशा ही व्यक्ति के जीवन में आती रहती हैं। लेकिन देखना यह होता है कि उस घटना या परिस्थिति की व्यक्ति के मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है; और फिर वह उस स्थिति का मुकाबला करने के लिए कैसा आचरण करता है। जिन आचरणों से फल अच्छा निकलता है वे ही समझदारी कहलाते हैं–उसे ही विचारप्रौढ़ता कहा जाता है और जिन आचरणों से स्थिति बिगड़ती हो, समस्या और उलझती हो, उन्हें ही नासमझी अथवा 'अपरिपक्व आचरण' कहा जाता है।

प्रायः दुनिया देखने से और तजुर्बे से लोगों में समझदारी और गम्भीरता आती देखी जाती है। वास्तव में वे लोग भाग्यशाली हैं जो जीवन के बढ़ते हुए वर्षों से समझदारी सीखते चले जाते हैं। लेकिन ऐसे लोग भी बहुत बड़ी तादाद में मिलते हैं जो बूढ़े होकर भी परिपक्वता और समझदारी हासिल नहीं कर पाते। वृद्धावस्था तक भी उनके आचरण बचकाने बने रहते हैं। कहना न होगा कि ऐसे लोग जीवनभर सुख नहीं पाते। वे सदा मन के रोगी बने रहते हैं। जलन, कुढ़न, गम और चिन्ता में डूबे ऐसे व्यक्ति सिर्फ अपनी जिन्दगी को घसीट-घसीटकर पूरा करते हैं। इन्हीं व्यक्तियों में ऐसे कई लोग भी निकलते हैं जो आत्महत्या कर लेते हैं, जो वास्तव में नासमझी या मूर्खता की पराकाष्ठा होती है।

जो जीवन व्यक्ति को आनन्द उपभोग करने के लिए मिला हो उसे दुःखों की दलदल में फंसा डालने से अधिक बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है।

2. भावनाओं का रूप और प्रकार

वैज्ञानिकों ने यह माना है कि मनुष्य-शरीर दुनिया की सबसे अद्‌भुत वस्तु है। शरीर के भीतर होने वाली क्रियाएं, शरीर के भिन्न-भिन्न अंग और उनके कार्य सभी आश्चर्यचकित कर देने वाले हैं। मनुष्य-शरीर में कैमरा है टेलीफोन है, टेलीविजन है, तार है और इन सभी से अधिक चमत्कारपूर्ण वस्तु है–मनुष्य का मस्तिष्क। मानव-मस्तिष्क (दिमाग) दुनिया के सभी प्राणियों से अधिक विकसित है। अपने मस्तिष्क के कारण ही मनुष्य दुनिया का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बन पाया है। अपने मस्तिष्क के कारण ही उसने दुनिया के दूसरे प्राणियों पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है। मस्तिष्क के द्वारा ही उसने वैज्ञानिक उपलब्धियां प्राप्त की है। जिनसे जीवन सुख-सुविधापूर्ण और सम्पन्न बनता जा रहा है। मनुष्य ने अपने मस्तिष्क के बल पर ही प्रकृति के अनेक गूढ़ रहस्यों को खोज निकाला है और आज वह दूसरे सितारों में पहुंचने लगा है।

वहां हमारे आलोच्य विषय 'भावनाओं' का भी सीधा सम्बन्ध हमारे मस्तिष्क से ही है। भावनाएं मस्तिष्क में ही जन्म लेती हैं। मस्तिष्क ही भावानाओं की क्रीड़ास्थली है। वस्तुतः मन शब्द का अर्थ हमारा मस्तिष्क ही है।

प्रभाव का आभास

एक व्यक्ति है–जिसका चेहरा उदास है; आंखें बदरौनक हैं; निचला होंठ कुछ लटका हुआ है; माथे पर गहरी सलवटें खिंची हुई है; वह गमगीन और विचारों में उलझा हुआ लगता है। स्पष्ट है कि यह व्यक्ति भावनाओं का शिकार है। एक दूसरा व्यक्ति है–जिसके होंठों पर मुस्कराहट खेल रही है; आंखों में चमक है; चेहरा खिला हुआ है। वह कोई गीत गुनगुना रहा है, उसके व्यक्तित्व से प्रसन्नता फूटी पड़ रही है। यह सब भी भावनाओं का चमत्कार है।

भावनाओं के दो प्रकार

शरीर पर भावनाओं का जो प्रभाव पड़ता है उसके अनुसार भावनाएं दो प्रकार की होती हैं। पहली प्रकार का भावना-समूह वह है कि जिन भावनाओं के द्वारा शरीर के विभिन्न भाग अतिरिक्त रूप से उत्तेजित हो जाते हैं। यह अतिरिक्त उत्तेजना स्नायुमण्डल के द्वारा भी आती है जिसका प्रभाव किसी खास अंग या पेशी (पुट्ठे) पर पड़ता है, तथा एक या एक से अधिक नलिकाविहीन ग्रन्थियां भी उत्तेजित हो सकती हैं। इस प्रकार की अतिरिक्त उत्तेजना से शरीर में अच्छा-भलापन नहीं महसूस होता। इसलिए इन भावनाओं को दुखकारी भावनाएं कहा जाता है। इन दुखकारी भावनाओं से लोग सदियों से परिचित हैं। क्रोध, चिन्ता, साहसहीनता, भय, शोक, असन्तोष, ईर्ष्या, द्वेष आदि इन्हीं दुखकारी भावनाओं के अन्तर्गत आते हैं।

दूसरी श्रेणी का भावना-समूह वह है कि जिन भावनाओं में शरीर में एक अच्छा-भला लगने वाला उठान आता है। वस्तुतः उत्तेजना इस उठान में भी होती है। लेकिन न तो वह अधिक होती है, और न कमजोर। इसलिए इस श्रेणी की भावनाओं को सुखकारी भावनाएं कहा जाता है। जनसामान्य का इन सुखकारी भावनाओं से भी पुराना परिचय है–आशा, साहस, विश्वास, निर्भयता, प्रसन्नता, प्रेम, सहयोग आदि।

प्रभाव की प्रक्रिया

क्रोधावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन

एक क्रुद्ध व्यक्ति को देखते ही कोई भी यह बात जान लेता है कि वह गुस्से में है; क्योंकि उसके शरीर में बाहरी परिवर्तन स्पष्ट नजर आते हैं–जैसे चेहरा लाल हो जाता है; आंखों के पलक चौड़े पड़ जाते हैं; आंखों के सफेद भाग में सुर्खी आ जाती है; होंठ भिंच जाते हैं; जबड़ा जकड़ा हुआ-सा हो जाता है; हाथों की मुट्ठियां भिंच जाती है; हाथों और पैरों में कम्पन दिखाई देता है; किसी हद तक आवाज कांपती और लरजती हो जाती है।

किन्तु यह शरीर के बाहरी भाग में होने वाले परिवर्तन है। शरीर के भीतर भी परिवर्तन होते हैं। वास्तव में ये बाहरी परिवर्तन के कारण ही परिलक्षित होते हैं। भीतरी परिवर्तन के अपेक्षाकृत गम्भीर और महत्वपूर्ण होते हैं। क्रोधावेश में समस्त शरीर के खून में जमने की शक्ति बढ़ जाती है। प्रकृति किन-किन उपायों से जीवन-रक्षा

की व्यवस्था करती है, कई बार ऐसे रहस्य जानकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है खून जमने की क्रिया भी प्रकृति का एक रक्षात्मक उपाय ही होती है। क्योंकि क्रोधावेश में इस बात की बहुत सम्भावना होती है कि लड़ाई में चोट लग जाए, खून बहने लगे। जब खून में जमने की अधिक शक्ति होगी, तो रक्तहानि कम होगी।

इसी तरह खून-सम्बन्धी एक परिवर्तन यह भी होता है कि खून के कण करोड़ों की तादाद में बढ़ जाते हैं। गुस्से की हालत में पेट की पेशियां ऐंठ जाती हैं। वे इतनी सख्ती से ऐंठती हैं कि पेट में कोई चीज आगे नहीं बढ़ पाती। अर्थात् पाचन का काम एकदम ठप्प हो जाता है। कई बार इस तरह की ऐंठन से कुछ व्यक्ति पेट में दर्द महसूस करने लगते हैं। कुछ परिवर्तन इनसे भी अधिक गम्भीर होते हैं। जैसे हृदय की गति तेज़ हो जाना और रक्त का दबाव (ब्लड-प्रेशर) बढ़ जाना। वास्तव में हृदय और रक्तचाप के ये परिवर्तन कभी-कभी घातक भी सिद्ध होते हैं। रक्तचाप की अधिकता से मस्तिष्क की रक्तवाहिनी फटकर व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो जाती है। हृदय की धमनी रूककर 'हार्ट फेल' होने से भी मृत्यु हो जाती है।

इस तरह कुल मिलाकर क्रोध का फल होता है–पेट का दर्द, थका हुआ दिल और मृत्यु का खतरा। वस्तुतः व्यक्ति के लिए यह सौभाग्य की बात होती है कि गुस्सा थोड़े समय का आवेश होता है। लेकिन ऐसे लोग भी मिलतें हैं, जिनका गुस्सा कई-कई दिनों तक शान्त नहीं होता। ऐसे बहुत-से लोग होतें हैं जो क्रोध से न सही, किसी दूसरी दुखकारी भावना से लगातार आक्रान्त रहते हैं।

भावुकताः अभिशाप भी वरदान भी

बहुत-से लोगों ने बड़ा भावुक स्वभाव पाया होता है। उनके साथ अच्छी बात यह होती है कि वे सुखकारी भावनाओं की ओर अधिक झुकते हैं। लेकिन जब परिस्थितियोंवश दुखकारी भावनाओं से पाला पड़ जाता है तो दुःख भी चरम सीमा का पाते हैं।

किसी विचारक ने कल्पना की है कि क्या ही अच्छा होता कि मनुष्य भावनाओं के इस दबाव से मुक्त रहता। लेकिन वह मुक्त तभी हो सकता है जब बुद्धिहीन हो जाए। इस दृष्टि से इन विचारक महोदय ने बुद्धू व्यक्ति को सराहते हुए कहा है, "सबसे अच्छा मूढ़ जिसे न व्यापे जगत्-गति।"

संजीदा व्यक्ति भावनात्मकता के अधिक शिकार

मूढ़ मनुष्य अलबत्ता भावनात्मकता से बचा रहता है; मगर समझदार आदमी

इसका अधिक शिकार होता है, क्योंकि वह अपनी जिम्मेदारियों को अधिक महसूस करता है। उसके सामने एक नहीं दस उत्तरदायित्व रहते हैं।

तथ्य और विडम्बना

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समय के साथ-साथ मनुष्य का अधिक बौद्धिक विकास होता जा रहा है। इसी विकास के आधार पर वह वैज्ञानिक उपलब्धियां प्राप्त कर रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी वह मन और शरीर के अधिकाधिक रहस्यों और तथ्यों से परिचित होता जा रहा है।

किन्तु हमें इस विडम्बना को भी स्वीकार करना होगा कि इस बौद्धिक विकास के साथ ही मन की भावनाओं का जाल भी अधिक पेचीदा होता जा रहा है। मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण से इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि संसार के कुल रोगियों में आधी संख्या मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्तियों की है। जो देश जितना अधिक प्रगतिशील और बुनियादी है। वहां मन के रोगियों की संख्या उतनी ही अधिक है।

लेकिन फिर यह भी एक तथ्य है कि मनुष्य ज्ञान-अर्जन के लिए कटिबद्ध है। विज्ञान का सम्बल लेकर वह अज्ञान के अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश से दूर करके आगे बढ़ रहा है और बढ़ता रहेगा। आज से 2500 वर्ष पहले रोगों को देवताओं की अप्रसन्नता का परिणाम समझा जाता था और उनसे छुटकारा पाने के लिए मनुष्य देवताओं को भेंट चढ़ाता था। किन्तु आज युग कितना बदल गया है। कठिन से कठिन रोग की चिकित्सा और औषधियां निकल आई हैं। मन और भावनाओं के रहस्य का उद्‌घाटन भी चिकित्सा-क्षेत्र की एक और बड़ी उपलब्धि है। प्रत्यक्ष रूप से कारण स्पष्ट न होने पर भावनाओं से उत्पन्न जिन रोगों को पिछले दिनों तक कर्मों के भोग या भाग्य का दोष माना जाता था, भावनाओं की खोज ने आज उन्हें आईने के समान स्पष्ट खोलकर रख दिया है। साथ ही भावना-नियन्त्रण द्वारा इनसे मुक्त होने का मार्ग भी स्पष्ट किया है।

भावनाजनित लक्षण

कालेज में लेखक का सहपाठी एक पेट का आपरेशन देखते-देखते बेहोश हो गया। यह बेहोश होने वाला विद्यार्थी काफी स्वस्थ था। न तो उसका दिल कमजोर था न उसे रक्तचाप-सम्बन्धी कोई शिकायत थी। किन्तु आपरेशन में चीरफाड़ की क्रिया ने उसके मन में भय की भावना उत्पन्न कर दी। जिसका फल यह हुआ कि उसकी रक्तवाहिनियां सिकुड़ गईं और मस्तिष्क में रक्त की कमी होने के कारण बेहोशी हो गई।

एक प्रोफेसर साहब के नौकर ने अपनी नौकरी इसलिए छोड़ दी कि उसे प्रोफेसर के लिए बाजार से मांस (गोश्त) खरीदकर लाना पड़ता था। नौकर गोश्त से बहुत घृणा करता था। वह कसाई की दुकान पर जब भी गोश्त देख लेता था, उसे वमन (कै) हो जाती थी। इस केस में घृणा की भावना से उसके पेट की पेशियां ऐंठ जाती थी। जिसके फलस्वरूप उसे वमन होती थी।

कुछ कौतुक प्रिय नवयुवकों ने कस्बे के एक सेठजी के पास एक गुमनाम पत्र भेज दिया, जिसमें लिखा था कि 'या तो अमुक दिन तक एक लाख रूपया अमुक स्थान पर पहुंचा दो, अन्यथा तुम्हारा और तुम्हारे बेटे का खून कर दिया जाएगा।' यह पत्र पाकर सेठजी की हालत ही खराब हो गई। वह एक कदम नहीं चल सकते थे। डाक्टर बुलाया गया। उसने देखा कि उनका दिल रेल की सी तेज़ी से चल रहा है, उन्हें कै भी हो रही थी और दस्तों का तो यह हाल था कि रुकते ही न थे। उनके पहनने के कपड़े और बिस्तर सभी खराब हो गए थे। डाक्टर ने उन्हें अस्पताल भिजवाया, जहां लगभग एक महीने में उनकी हालत ठीक हो गई।

यह उदाहरण भावना के प्रभाव को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है। पत्र पाने के पहले क्षण तक ये सेठजी अच्छे-खासे स्वस्थ व्यक्ति थे। न उनको कोई हृदय-रोग था, न दस्तों की बीमारी थी; न जिगर खराब था, न टी० बी०। किन्तु भय की भावना ने उन्हें इस हद तक रोगी बना दिया कि अस्पताल में एक बार डाक्टरों ने यह समझ लिया कि सेठजी नहीं बच पाएंगे।

सुखकारी भावनाओं की झांकी

दुखकारी भावनाओं का स्पष्टीकरण ऊपर पाठकों को दिया। सुखकारी भावनाओं का सन्दर्भ भी पिछले पृष्ठ में दे चुके हैं। ये सुखकारी भावनाएं व्यक्ति को किस तरह उठान देती हैं, इसका उदाहरण, पाठक, परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले छात्र में देख सकते हैं। परीक्षा का फल पता लगते ही विद्यार्थी का चेहरा खिल उठता है, उसके पैर थिरकने लगते है। इस उपलक्ष्य में जब मिठाई खाने की नौबत आती है तो बार-बार खाने के बाद भी वह भूखा-सा ही रहता है। और कभी-कभी विपरीत रूप से वह शाम तक बिना खाए ही रह जाता है और कोई कमजोरी नहीं अनुभव करता। वह खूब हंसता है और मन में प्रफुल्लित होता है।

ये हुए बाहरी लक्षण या सामान्य स्थिति से भिन्न बाहरी परिवर्तन। उसके शरीर में भीतरी परिवर्तन भी हुए हैं। रक्त-संचार तेज हुआ है, पाचक रस उत्तेजित हुए हैं, स्नायु अधिक क्रियाशील हो उठे हैं, और नलिकाविहीन ग्रन्थियों ने भी कुछ विशिष्ट स्राव रक्त में छोड़े हैं। लेकिन ये सभी उत्तेजनात्मक क्रियाएं इतनी मात्रा के अन्दर

हुई है कि जिससे उस छात्र को एक अच्छा-भलापन, एक 'स्वस्थ उठान' अनुभव हुआ। वस्तुतः जीवन में यही 'स्वस्थ उठान' अपेक्षित होता है, इसीमें जीवन का असली स्वाद छिपा होता है। और इस उठान को हम और आप कैसे प्राप्त करें इसकी चर्चा हमने विस्तृत रूप से पुस्तक के अगले अध्यायों में की है।

आगे की बात

दुखकारी भावनाएं चूंकि शरीर में दुःख उत्पन्न करती हैं अतः उनकी वैज्ञानिक संज्ञा 'दुःखोत्पादक भावनाएं' है। आगे उनका वर्णन इसी नाम से किया गया है। इसी तरह सुखकारी भावनाओं को 'सुखोत्पादक भावनाओं का नाम दिया गया है। दोनों ही प्रकार की भावनाएं प्रायः दो माध्यमों से काम करती हैं : (1) स्नायुमण्डल द्वारा या मस्तिष्क द्वारा (क्योंकि स्नायुओं का संचालन मस्तिष्क ही करता है); (2) नलिकाविहीन ग्रान्थियों द्वारा।

3. भावनाजनित स्नायु रोग

शरीर में स्नायुओं का एक मुख्य कार्य पेशियों को चलाना होता है। ठीक वैसे ही जैसे कठपुतली के नाच में तमाशा दिखाने वाला डोरे के माध्यम से कठपुतिलियों को नचाता है। कह सकते हैं कि स्नायु डोरे के समान होते हैं, और पेशियां कठपुतली होती हैं। मुख्य स्नायु साधारण रस्सी के समान मोटा होता है और फिर उसकी शाखा-प्रशाखाएं पतली होती चली जाती हैं, यहां त.. वे बहुत बारीक सूत के समान पतली हो जाती हैं। ये सब स्नायु तार की तरह ठोस होते हैं। इनका रंग सफेद होता है। स्नायु एक जाल की तरह हमारे शरीर में फैले हैं।

पूरे स्नायुमण्डल के दो भाग होते हैं–ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक स्नायुओं से हम अपनी इच्छानुसार काम लेते हैं। जैसे चलने-फिरने या कोई चीज उठाने-धरने की क्रिया में हम हाथ-पैरों को इच्छानुसार हिलाते-डुलाते है। लेकिन अनैच्छिक स्नायुओं पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। यह अनैच्छिक स्नायु शरीर की भीतरी क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। जैसे हृदय की धड़कन, श्वास-प्रश्वास, आंतों का कम्पन आदि। हम इच्छापूर्वक इन क्रियाओं में कोई दखल नहीं दे सकते। मस्तिष्क में इस अनैच्छिक स्नायुमण्डल का केन्द्र 'हायपोथैल्मस' कहलाता है। इसी केन्द्र द्वारा नलिकाविहीन ग्रन्थि पिट्यूटरी भी उत्तेजित होती है। आगे के वर्णन में पाठक देखेंगे कि भावनाएं वस्तुतः इसी हायपोथैल्मस केन्द्र द्वारा शरीर पर अपना प्रभाव डालती है। अनैच्छिक स्नायुमण्डल से समबद्ध समस्त अंगो की पेशियां इस केन्द्र से प्रभावित होती हैं।

स्नायुओं द्वारा पेशियों में तनाव और पीड़ा

शरीर के किसी भाग में भी दर्द होना इस बात का सूचक होता है कि उस हिस्से की पेशियों में तनाव आ गया है। तनाव की यह पीड़ा काफी देर तक स्थायी रहती

है। यदि इस तथ्य का अनुभव करना हो तो आप अपने हाथ की मुट्ठी मजबूती के साथ बांधिए और बंधी रहने दीजिए। शुरू-शुरू में आपको कोई पीड़ा या तनाव नहीं मालूम देगा। लेकिन जो पेशियां मुट्ठी बांधने में तनी हैं फिर उनमें दर्द शुरू हो जाएगा और धीरे-धीरे असह्य होंने लगेगा। दुःखोत्पादक भावनाएं भी इसी तरह पेशियों में तनाव पैदा करती हैं। फलतः शरीर के बाहरी या भीतर के किसी भी भाग में दर्द अनुभव होने लगता है।

भावनाजनिक तनाव प्रायः उन्हीं पेशियों में अधिक आता है, जो आमतौर पर इस्तेमाल में आती है, जैसे गर्दन के पिछले भाग की पेशियां। मान लीजिए आप किसी चिन्ता में डूबे आरामकुर्सी पर सिर टिकाए बैठे हैं। एकाध घण्टा इसी मुद्रा में बैठे रहने के पश्चात् जब आप उठते हैं तो सहसा अनुभव होता है कि गर्दन के पिछले भाग में दर्द हो रहा है–चिन्ता के प्रभाव से पेशियों का तनाव।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में यह भावनाजनित पीड़ा शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में अनुभव होती है। इसके स्थान इतने अधिक हैं कि उनकी गणना प्रायः कठिन हो जाती है, फिर भी कुछ उदाहरणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जा सकता है।

बांह– लगभग सोलह वर्ष की एक अविवाहिता लड़की को उसके पिता मेरे पास लाए। उसकी पूरी दाहिनी बांह और हाथ ऐंठा हुआ था। काफी औषधि-उपचार किया जा चुका था, किन्तु लाभ नहीं हुआ। उसकी बांह की यह स्थिति कभी थोड़ी देर रहती थी और कभी-कभी पूरे दिन रह जाती थी। ऐंठन की पीड़ा कभी कम और कभी ज्यादा होती थी। पूछताछ करने पर पता चला कि लड़की अपनी कक्षा में काफी कमजोर छात्राओं में थी, उसकी और सभी सहेलियां क्लास में अच्छी थीं। लड़की को परीक्षा पास करने की चिन्ता बहुत सताती थी जिसके फलस्वरूप उसकी बांहों की पेशियां ऐंठ जाती थीं। क्योंकि परीक्षा में दाहिने हाथ से लिखना होता है, कदाचित् इसी सन्दर्भ से उसका दाहिना हाथ ऐंठता था।

गले का गोला–कई बार रोगी डाक्टर के पास आकर गले में कोई गोला-सा बढ़कर अटक जाने की शिकायत करता है। किन्तु गले के भीतर न तो कोई रसौली होती है न फोड़ा, अपितु पेट में जाने वाली नली की पेशियां ऐंठकर वहां का रास्ता बन्द कर देती हैं जिससे रोगी को परेशानी और पीड़ा होती है रास्ता बन्द होने के कारण जब रोगी कोई चीज खाने या पीने की कोशिश करता है तो वह एकाएक गले से नीचे नहीं उतर पाती, जिससे रोगी और परेशानी अनुभव करता है और एक तरह से उसका विश्वास और दृढ़ होने लगता है कि गले के किसी रोग ने रास्ता घेर लिया है। वस्तुतः पेशियां ढीली होकर खुलने में थोड़ा समय लगता है। वे एकदम

नहीं खुल पाती। दुर्भाग्य से इसी दरम्यान व्यक्ति अपने रोगी होने का निर्णय ले लेता है।

पेट के रास्ते का अवरोध–गले से नीचे उतरकर छाती के पीछे से गुजरती हुई नली पेट में जाकर खुलती है। और इसके द्वार की पेशियां जब भावनाजन्य ऐंठन से द्वार को रोक लेती हैं तो कोई भी खाने-पीने की चीज़ पेट में नहीं उतर पाती। यह स्थिति कई-कई दिनों और सप्ताहों तक रह जाती है; फलतः रोगी भूख-प्यास की परेशानी का शिकार हो जाता है।

वस्तुतः हमारा पेट (आमाशय) एक ऐसा भीतरी अंग है जो भावनाओं से बहुत जल्दी प्रभावित होता है। हर्ष, उत्साह, आशा जैसी सुखोत्पादक भावनाओं से हमें अच्छी भूख लगती है; किन्तु इसके विपरीत दुःखोत्पादक भावनाओं में भूख या तो बहुत कम हो जाती है या एकदम बन्द ही हो जाती है।

पेट की पेशियां भी दुःखोत्पादक भावनाओं से ऐंठती हैं, किन्तु ऐंठन की तीव्रता या मृदुता इस बात पर निर्भर करती है कि भावनाओं का वेग तीव्र है या मृदु। मृदुता की हालत में रोगी पेट की पेशियों में सख्ती अनुभव करता है जैसे उसके पेट में पत्थर अड़ गया हो। ऐसी हालत में भूख-प्यास लुप्त हो जाती है। तीव्र दशा में रोगी ऐसी उदरपीड़ा अनुभव करता है जैसे उसके पेट में ज़ख्म हो गए हों। असली रूप से ज़ख्म होने पर भी ज़ख्म के आसपास वाली आमाशय की पेशियां ही ऐंठती हैं, इसलिए दोनों प्रकार के दर्द एकसमान ही अनुभव होते हैं।

विशेषज्ञों का कथन है कि पेट के ज़ख्म की चिकित्सा के लिए आने वाले रोगियों में पचास प्रतिशत रोगी भावनाजन्य ऐंठन के शिकार होते हैं। ऐसे रोगी तभी ठीक हो पाते हैं जब उनकी चिन्ता और परेशानियां समाप्त हो जाती हैं, जब दुःखान्त स्थिति सुख में बदल जाती है।

लेखक को एक ऐसे रोगी का तजुर्बा है जो सात वर्ष तक भावनाजन्य उदर-विकार भोगता रहा। लगभग चालीस वर्ष की आयु का वह रोगी खण्डसारी का काम करता था। संयोगवश सम्पत्ति के बंटवारे के बारे में उसका एक भाई से झगड़ा चला और मुकद्दमेबाज़ी शुरू हो गई इस व्यक्ति का पक्ष कुछ कमजोर था और वह निचली अदालतों में हारता रहा। फलतः चिन्ता और परेशानी की भावनाओं ने अपना असर शुरू कर दिया। यह रोगी निरन्तर पेट की सख्ती और भूख न लगने की शिकायत किया करता था। भूख के अभाव में उसे खाना रुचता ही न था और वह कई-कई दिन लगातार बिना खाए रह जाता था। इस रोगी पर भावनाजन्य ऐंठन का प्रभाव इतने व्यापक रूप से शरीर पर पड़ा था कि कोई चीज़ उठाते-धरते अथवा लिखते समय उसके हाथ भी कांपते थे। सात वर्षों तक इसी अवस्था में रहते-रहते

उसका स्वास्थ्य काफी छिन्न-भिन्न हो गया था। अन्त में वह हाईकोर्ट में जाकर जीत गया और अदालत ने उसके पक्ष में कई हजार रूपये की डिक्री भी दी। फिर तो पन्द्रह दिन के अन्दर उसके स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। भूख खुल गई वजन बढ़ने लगा तथा और सब लक्षण भी स्वाभाविक स्तर पर लौट आए।

पाचक यन्त्र भावनाओं का आईना

ऊपर जो हमने पेट-सम्बन्धी चर्चा की है वह सिर्फ पेट तक ही सीमित नहीं होती, पूरा पाचक यन्त्र हमारी भावनाओं को प्रतिबिम्बित करता है। कई लोगों को भावनाजन्य लक्षण पेट में न होकर निचली आंतों में ऐंठन और दर्द पैदा करते हैं। इस सम्बन्ध में यह एक तथ्य है कि किसी एक विशिष्ट भावना से एक बार व्यक्ति का जो अंग प्रभावित हो लेता है, हर बार उस भावना से वही अंग पीड़ित होता है। जैसे यदि चिन्ता से किसी व्यक्ति के सिर के अग्र भाग में दर्द होता है, तो हमेशा ही चिन्तित होने पर वही भाग दुखेगा।

इसी तरह 'अपैण्डिक्स' में भी दर्द होता है, जिसे अपैण्डिसाइटीज़ कहते हैं। अनेक बार यह भी भावनाजनित होता है। यह आपरेशनसाध्य रोग माना जाता है, किन्तु आपरेशन के बाद भी यह पीड़ा पुनः होती देखी जाती है और तब उसका कारण भावनाजन्य रूग्णता ही होती है।

पेट की गैस–भावना-प्रताड़ित आंतों की पेशियां पेट में 'गैस' (हवा का रूकना) पैदा करने में बड़ा सक्रिय भाग लेती हैं। आज गैस के रोगियो की संख्या जो दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, इनमें पचहत्तर प्रतिशत गैस के रोगी मानसिक कारणों से होते हैं। यही वजह है कि अनेक प्रकार के औषधोपचार एवं खान-पान-सम्बन्धी पथ्य-परहेज करने के बावजूद भी चिकित्सक रोगी की गैस पर काबू नहीं कर पाते। गैस के विकार आज रोग न रहकर सामान्य जन के लिए समस्या बनते जा रहे हैं। दरअसल आम डाक्टर-हकीम ऐसे रोगियों के इलाज में भावनात्मक पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं देते।

स्वाभाविक रूप से थोड़ी-बहुत वायु आंतों में हर वक्त रहती है; परन्तु जब आंतो की पेशियां ऐंठकर हवा के आने का मार्ग रोक देती है, तो पेट फुलना, दर्द होना बहुत स्वाभाविक होता है। भावनाजन्य तनाव हटने पर जब पेशियां ढीली पड़ जाती हैं तो कैद हुई हवा फैलती है, जिससे चैन मिलता है और वह अधोमार्ग से बाहर निकल जाती है।

डकारें आना–बहुत अधिक या लगातार डकारें आना भी भावनाजन्य रूग्णता

का लक्षण होता है। लेखक का एक रोगी, जो बिसाती की दुकान करता था, बड़े उपहासास्पद ढंग से निरन्तर दस-पन्द्रह मिनट तक डकारें लेता रहता था। उसे अपने बड़े लड़के की ओर से काफी खीज और चिन्ता रहती थी। लड़का हाईस्कूल तक पढ़ने के बाद आगे पढ़ाई न कर सका था। पढ़ने में उसका दिल भी नहीं लगता था। इधर किसी व्यापार-रोजगार में भी वह मन नहीं लगा रहा था। इन बातों को लेकर जब बाप-बेटे में बहस-मुबाहिसा होता तो बाप को डकारों का दौरा शुरू हो जाता था। अन्त में जब वह लड़का दूसरे शहर में जाकर अपने चचेरे भाई के साथ व्यापार में शामिल हो गया, तभी उसके पिता की यह हालत ठीक हो पाई।

कलेजा भारी है–कई बार हम लोग ऐसा अनुभव करते हैं कि कलेजा (छाती) भारी हो रहा है। यह अनुभव प्रायः भोजन करने के बाद होता है। ऐसा मालूम देता है कि सारा भोजन कलेजे पर ही रखा है, नीचे को नही सरक रहा है। उस स्थल पर हमें एक प्रकार का दबाव और बेचैनी महसूस होती है। किन्तु वास्तव में वहां खाना नहीं रूका होता है, अपितु भावना-क्षोभ के कारण वहां की पेशियों मे हल्का तनाव पैदा हो गया होता है यदि तनाव कुछ अधिक होता है तो उबकाई-सी आती है और जी मिचलाता है।

ऐसी दशा में व्यक्ति पानी आदि पीकर परेशानी से छुटकारा पाना चाहता है। कई बार वह यह भी सन्देह करने लगता है कि जो भोजन उसने खाया था, शायद वह ठीक नहीं था। किन्तु किसी भी उपाय से वह लक्षण दूर नही हो पाता। कलेजा हल्का तभी होता है जब पेशियों पर तनाव हट जाता है।

रक्तवाहिनियों पर भावनाओं का प्रभाव

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, शरीर के प्रत्येक अवयव की पेशियां भावनाजन्य ऐंठन का शिकार हो सकती हैं। फलतः रक्तवाहिनियों की पेशियां भी इसका अपवाद नहीं हैं। पाचन-संस्थान की पेशियों की तरह ही ये भी प्रायः प्रभावित होती रहती हैं। शर्मसार होकर चेहरे का लाल या गुलाबी हो जाना 'लज्जा' की भावना का प्रतीक होता है।

खोपड़ी के ऊपर या नीचे की मध्यम आकार की रक्तवाहिनियों की पेशियां भावनाओं के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। भावनाओं के प्रभाव से जैसे ही खोपड़ी की रक्तवाहिनियां सुकड़ती हैं तो सिरदर्द शुरू हो जाता है। साधारण सिरदर्द से लेकर 'माईग्रेन' नामक हठीला सिरदर्द भी भावनाजन्य होता है। इस लक्षण की व्यापकता यहां तक बढ़ी हुई है कि अब पचासी प्रतिशत रोगियों में सिरदर्द भावनाजन्य होता

है। यूं कई बार स्वयं रोगी और डाक्टर भी इस बात को खास तौर पर समझ लेते हैं कि अमुक परेशानी या चिन्ता के कारण सिरदर्द पैदा हुआ हैं, लेकिन कई मर्तबा कारण अस्पष्ट भी होता है।

त्वचा-विकार–रक्तवाहिनियों पर पड़ने वाला प्रभाव कई बार त्वचा-लक्षण भी पैदा करता है। अनेक रोगियों की त्वचा पर एग्जिमा, खुजली, पित्त (छपाकी) भावनाजन्य होते हैं। इनपर औषधि-उपचार का कोई प्रभाव नहीं होता। वस्तुतः यह विकार तभी छिपते हैं, जब वह विशिष्ट भावना, चिन्ता या परेशानी समाप्त हो जाती है। त्वचा के इन लक्षणों का रहस्य अभी हाल में ही मालूम हो पाया है, इसीलिए अभी सामान्य चिकित्सक इन लक्षणों का सही निदान नहीं कर पाते। और जब कोई विशेषज्ञ रोगी को यह बताता है कि उसका एग्ज़िमा या खुजली चिन्ता और परेशानी से पैदा हुई है, तो सहसा रोगी उस पर विश्वास नहीं कर पाता।

एक जीवित उदाहरण–अमेरिका के डॉक्टर 'नारमन विन्सेण्ट पीले' ने अपनी एक विचित्र रोगिणी का केस लिखा है। डा० पीले मनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ ही गिरजे में परामर्शदाता मन्त्री भी थे। इस नाते से वे कष्टपीड़ित व्यक्तियों की सहायता करते थे। एक दिन "न्यू जर्सी" के एक गिरजे में जब पीले महोदय अपना प्रवचन समाप्त करके मंच से नीचे आए तो एक महिला ने उनसे कहा, "महाशय, क्या इस संसार में मेरे कष्ट का कोई इलाज नहीं है? मेरी स्थिति यह है कि मैं जब भी गिरजे में आती हूं तभी शरीर पर तेज खुजली शुरू हो जाती है।" और यह कहकर उस महिला ने पीले महोदय को अपनी बांहें उधाड़कर दिखाई जिनपर खुजली के लाल-लाल चकत्ते उभरे हुए थे। महिला ने बताया कि वह जब भी गिरजे में आकर कुर्सी पर बैठ जाती है, तभी खुजली शुरू हो जाती है। अन्त में वह परेशान होकर कहने लगी, "यदि मेरा यही हाल रहा तो मैं गिरजे में आना बन्द कर दूंगी।"

पीले महोदय ने उस महिला से मुस्कुराते हुए कहा, "देवी! कई बार लोगों के मन पर मेरे प्रवचनों की विचित्र प्रतिक्रियाएं होती हैं। लेकिन आपका मामला कुछ भिन्न दिखाई देता है।"

डा० पीले को इसी मध्य यह संदेह हुआ कि सम्भव है कुर्सी में कोई ऐसा समान लगा हो जो उसके शरीर के अनुकूल न पड़ता हो अर्थात् महिला के लिए 'एलर्जिक' हो, अथवा ऐसी ही कोई दूसरी बात है। अपने संदेह निवारण के लिए उन्होनें महिला से पूछा, "क्या किसी भी गिरजे में जाने पर आपकी यही दशा होती है या इसी गिरजे के साथ यह बात है?"

"मैं किसी भी गिरजे में चली जाऊं, सब जगह यही हाल होता है।" महिला ने बताया।

डाक्टर महोदय भी सोच-विचार में पड़ गए। अन्त में उन्होंने महिला से कहा, "मैं तुम्हारे पारिवारिक डाक्टर से बातचीत करना चाहूंगा। शायद उनका मत जानकर मैं तुम्हारी समस्या सुलझा सकूं।"

महिला ने अपनी स्वीकृति दे दी। डाक्टर पीले ने तुरन्त ही उस डाक्टर को फोन किया। डाक्टर ने उत्तर दिया, "इस महिला के रोग को मैं अन्दरूनी चमला (इण्टर्नल एग्जिमा) समझता हूं। क्योंकि महिला मानसिक रूप से अन्दर ही अन्दर अपने को अधेड़ती है। लेकिन मुझे इसका सही कारण पता नहीं चल पाया है। सच तो यह है कि यह मैडिकल केस नहीं है। यह आपके मनोवैज्ञानिक क्षेत्र का ही केस है। आप रोगिणी का मनोविश्लेषण करके पता चलाइए।"

डाक्टर पीले ने अपने ढंग से रोगिणी का जीवन-इतिहास मालूम करना शुरू किया। और तब यह रहस्य प्रकाश में आया कि वह महिला किसी बड़ी फर्म के एकाउंटेंट के पद पर काम करती है। और नियमित रूप से गोलमाल करके अपने मालिक का धन चुरा रही है। उस महिला ने आंखों में आंसू भरकर पीले महोदय से यह कहा कि उसने चोरी की शुरूआत बहुत छोटी रकम से की थी और हर बार इस नीयत से पैसे निकालती थी कि जल्दी ही वह उन्हें पूरा कर देगी। लेकिन वह कभी पूरा नहीं कर पाई। और अब वह रकम बढ़कर कई हजार डालर तक पहुंच गई है।

डा० पीले ने उस महिला से कहा कि इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिए उसे फर्म के मालिक के सामने सब कुछ स्वीकार कर लेना चाहिए।

इस पर महिला ने कहा—"किन्तु ऐसा करने पर तो मालिक लोग मेरे ऊपर बरस' पड़ेंगे, साथ ही मेरी नौकरी भी जाती रहेगी।"

"हाँ, ऐसा तो होगा ही," डाक्टर ने कहा, लेकिन अपने ईमान और आत्मा को खो देने की अपेक्षा नौकरी खो देना कहीं अच्छा है।

प्रारम्भ में तो वह महिला इसके लिए तैयार नहीं हुई; लेकिन पीले महोदय के अनुरोध से अन्त में वह फर्म के मालिक के पास पहुंची और सारी बातें खोलकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। और तब फर्म का मालिक उसपर बुरी तरह बिगड़ उठा। लेकिन फिर उसने कहा, "चूंकि तुमने स्वयं सब कुछ स्वीकार किया है और तुम्हारा इरादा रुपया अदा करने का है, इसलिए मैं तुम्हें पुलिस में नहीं दूंगा और न तुम्हारे खिलाफ कोई कानूनी कार्यवाही करूंगा अपितु मैं तुम्हें एक जागरूक आत्मा की महिला मानूंगा, क्योंकि तुमने अन्तरात्मा की प्रेरणा से ही सब कुछ स्वीकार किया है" अलबत्ता वह नौकरी से हटा दी गई और इसके बाद महिला को कभी गिरजे में बैठकर खुजली नहीं उठी।

यह थी दुःखोत्पादक भावनाओं के कारण उत्पन्न खुजली। महिला के मन में चोरी करने की अपराध-भावना थी। जब वह गिरजे जैसे पवित्र स्थान पर आती थी तो उसके अन्तर्मन में वह भावना उग्र होकर रक्तवाहिनी पेशियों में ऐंठन पैदा कर देती थी और खुजली शुरू हो जाती थी। फिर जब उसने सही काम कर दिया तो भावना-क्षोभ हट गया, पेशियों की ऐंठन बन्द हो गई-महिला स्वस्थ हो गई।

और भी अनेक स्थानों की पेशियां इसी तरह भावनाजन्य ऐंठन की शिकार होती रहती हैं। वस्तुतः इन सबकी सूची तैयार नही की जा सकती। कई बार जब किसी व्यक्ति की छाती की बांई ओर की पेशियां प्रभावित होकर दर्द पैदा करती है तो सामान्य चिकित्सक भी दिल के दौरे के भ्रम में पड़ जाता है। लेखक को उसके एक हृदय-विशेषज्ञ डाक्टर मित्र ने बताया कि अक्सर लोग छाती के बांई ओर होने वाले दर्द से घबराकर उनके पास आते हैं। कई बार सामान्य डाक्टर भी ऐसे ही केस विशिष्ट निदान के लिए उनके पास भेजते हैं। किन्तु इस तरह आने वाले कुल रोगियों में पचहत्तर फीसदी रोगियों का दिल ठीक होता है। उन्हे कोई हृदय-विकार नहीं होता। स्पष्ट है कि ऐसे रोगियों की छाती का दर्द भावनाजन्य होता है।

जोड़ों का दर्द भी भावनात्मक होता है

कई बार घुटनों, कन्धों और दूसरे जोड़ों में भी भावनात्मक पीड़ा उठती देखी जाती है। लेखक का एक रोगी एक बहुत बड़ी कपड़ा मिल का मैनेजर था। यह व्यक्ति परिश्रमप्रिय था और अपने दफ्तर में बड़ी लगन से काम करता था; लेकिन कार्यालय के काम के अतिरिक्त उसे बहुत-से लोगों से मिलना पड़ता था। विभिन्न विभागों के लोग उसके पास अपनी शिकायतें लेकर आते थे। बहुत बार उसे पूरी मिल के कई-कई चक्कर भी लगाने पड़ते थे। धीरे-धीरे उसके घुटनों में दर्द रहने लगा; फिर कन्धों में दर्द हो गया। घुटनों का दर्द एक बार बहुत बढ़ गया। रोग का निदान हुआ वायुपीड़ा (रियूमैटिक पेन)। इलाज-माजरा शुरू हुआ, अच्छी से अच्छी औषधि दी गई, किन्तु लाभ रत्ती-भर न हुआ। अन्ततोगत्वा मैंने उसे छुट्टी लेकर पहाड़ पर चले जाने की सलाह दी। रोगी ने सन्देह किया कि कहीं पहाड़ की ठण्ड पाकर दर्द और न बढ़ जाए। किन्तु मैंने उसे आश्वस्त किया कि ऐसा नहीं होगा।

और यह रोगी जब पहाड़ पर पहुंच गया तो जाते ही उसने जो पहला पत्र मुझे लिखा उसका मज़मून यह था कि "यहां आकर तो रोग मानो जादू के असर से गायब हो गया। मैं यहां आकर तो पहले ही ठीक हो गया, जैसे रोग रास्ते में ही छूट गया हो।" इन महोदय का यह लिखना बिल्कुल सही था, क्योंकि इनके जोड़ों का दर्द

भावना-क्षोभ से था। तरह-तरह की जिम्मेदारी, अधिक लोगों से मिलना, प्रतिदिन नई समस्याओं का सामना करना, इन सभी कारणों ने मिलकर उन्हें भावना-क्षोभ का रोगी बना दिया था। फिर जैसे ही यह महोदय इस वातावरण से हटे तो जिम्मेदारियों और परेशानियों का दबाव एकदम समाप्त हो गया और उसके साथ ही जोड़ों का दर्द भी गायब हो गया।

वातावरण-परिवर्तन

जिस प्रकार वातावरण-परिवर्तन से इन मिल मैनेजर महोदय का रोग जाता रहा है। इसी तरह और भी बहुत-से रोगी जो भावनात्मक दबाव के दूसरे-दूसरे लक्षणों से पीड़ित रहते हैं, वातावरण-परिवर्तन करते ही अपने को स्वस्थ पाते हैं।

कई बार लोग यह कहते सुने जाते हैं कि–"क्या बताएं हमें तो इस शहर की आबोहवा ही माफिक नहीं आती; यहां तो हम बारह महीने तीसों दिन ही बीमार रहतें है। और जब भी कहीं बाहर चले जातें हैं तो तबियत बड़ी साफ और शेर रहती है।" इन लोगों का कथन सही होता है कि शहर छोड़ते ही तबियत बदल जाती है, लेकिन कारण वहां का जलवायु नहीं होता बल्कि भावनाजन्य दबाव होता है। जैसे ही वातावरण बदलता है, दबाव हटकर व्यक्ति का स्वास्थ्य स्वाभाविक हो जाता है।

कमर का दर्द

सिरदर्द से जितने लोग पीड़ित होते हैं उससे दूसरे नम्बर पर कमर का दर्द आता है। एक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "संसार में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो कि जिसने कभी न कभी अपनी कमर में दर्द अनुभव न किया हो।" यह दर्द कमर के निचले भाग में होता है। कमर का दर्द सिर के दर्द की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। कुछ व्यक्ति दो-चार दिन तो कुछ लोग कई सप्ताह तक इस कमर के दर्द के शिकार रहते हैं।

कमर-दर्द के बारे में आम लोगों की एक घरेलू धारणा यह होती है कि कमर में 'चिनका' आ गया है। 'चिनका' का कारण वह यह समझते है कि इधर-उधर हिलते-डुलते या कोई हरकत करते वक्त कोई नस अपनी जगह से हट गई है इसी कारण दर्द हो रहा है। इसी विश्वास पर इस घरेलू रोग के कई घरेलू इलाज चले हुए है। जैसे कमर को मलवाना, वहां लात लगवाना अथवा कोई ऐसा व्यायाम करना जिससे वह हटी हुई नस अपनी जगह बैठ जाए। लेकिन इतने सब इलाजों के बावजूद

दर्द नही हटता। लेखक के एक-मित्र, जो एक अच्छे कलाकार भी है।, एक बार इसी प्रकार के कमर-दर्द के शिकार बन गए। लेखक के पास आने के पहले उन्होंने काफी इलाज कराए किन्तु दर्द टस से मस नह हुआ। अन्त में मैंने उन्हें यही सलाह दी कि आप प्रसन्न रहिए, दर्द को भूलने की कोशिश कीजिए, तो यह जाता रहेगा। लेकिन वह यह समझे की डाक्टर साहब ने टाल दिया, कोई अच्छा इलाज नही बताया। वस्तुत: वो दर्द को बहुत जल्दी दूर करवाना चाहते थे, क्योंकि दर्द के कारण सीधे होकर चल नहीं सकते थें। लगभग पन्द्रह दिन तक वे फिर इलाज-माजरे में लगे रहे। लेकिन कोई इलाज कामयाब न बैठा। काफी दिन बाद जब वे फिर लेखक के पास आए तो उनसे प्रश्न किया गया–"कहिए ! आपका दर्द कैसे ठीक हुआ ?" तो कहने लगे कि "इस दर्द का रहस्य कुछ पता नहीं चला। जब किसी इलाज से लाभ नहीं हुआ तो इलाज बन्द कर दिए गए। और फिर दर्द जिस तरह स्वयं आया था उसी तरह अपने-आप चला गया।" बाद को पता चला कि उनके सामने कुछ ऐसी पारिवारिक समस्याएं थीं जिनसे वे काफी समय तक खिन्नमन रहे, उसी दौरान उन्हें काफी समय तक खिन्न रहने के कारण कमर का दर्द सताता रहा। स्पष्ट है कि दर्द भावनाजन्य था।

वस्तुत: जब व्यक्ति किसी गम्भीर समस्या में उलझा होता है और उसी समय उसे भावनाजन्य पीड़ा सताती है, तो वह उसे भाग्य की दोहरी मार समझता है। कहता है कि 'एक चिन्ता से मुक्ति मिली ही नहीं शरीर में यह रोग और घुस गया। दिन आजकल विपरीत दशा में चल रहे हैं। ऐसी धारणा से प्राय: लोग और अधिक भावनाओं के जाल में फंस जाते हैं।

कमर-दर्द के बारे में यह बात उल्लेखनीय है कि यह दर्द स्वयं ही कभी बहुत हल्के रूप में होता है और ऐसा तभी होता जब भावनात्मक दबाव हल्का होता है। भावना-वेग उग्र होने पर दर्द भी तीव्र हो जाता है। कई बार हल्का कभी तेज चलता रहता है। पूर्ण मुक्ति तभी मिलती है जब भावना-क्षोभ पूर्ण रूप से हटकर वहां की पेशियों की ऐंठन खुल जाती है।

4. भावनाओं का नलिकाविहीन ग्रान्थियों पर प्रभाव

मनुष्य शरीर में नलिकाविहीन ग्रन्थियों की खोज शरीर-विज्ञान की एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी गई है। ईसवी सन् 1920 में जब डा० स्टीनाक ने इन ग्रन्थियों को खोज निकाला था। तो समूचे संसार के चिकित्सा-क्षेत्र में एक तहलका मच गया था। स्टीनाक की खोज की दिशा थी–बुढ़ापे और मृत्यु को जीतना। उसी सिलसिले में उसने इन ग्रन्थियों का पता चलाया था। इस आधी शताब्दी में यह खोज काफी आगे बढ़ी है, शोध अब भी जारी है। हमारे शरीर में इन ग्रन्थियों का कार्य बड़ा अद्‌भुत है और उसकी जानकारी बड़ी दिलचस्प है ये नलिकाविहीन ग्रन्थियां विशेष रूप से भावनाओं द्वारा प्रभावित होती हैं।

इन्हें नलिकाविहीन ग्रन्थियां इसलिए कहा जाता है चूंकि इनके रस किसी नलिका के माध्यम से नहीं निकलते वरन् ग्रन्थियों से चूकर सीधे रक्तस्राव में मिल जाते हैं। इन्हें अन्तःस्रावी ग्रन्थि भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इन्हें 'डक्टलैस ग्लाण्ड्स या 'एण्डोक्राइन्स' पुकारा जाता है। इनसे निकलने वाले रस या स्राव 'हारमोन्स' कहलाते हैं। हमारे शरीर में कुल सात नलिकाविहीन ग्रन्थियां हैं, जो अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के हारमोन्स द्वारा शरीर की भिन्न-भिन्न क्रियाओं को नियन्त्रित करती हैं। इनके नाम हैः

1. पिट्यूटरी, 2. थायरायड, 3. पैरा थायरायड, 4. पैन्कृआज़, 5. गोनाड्स, 6. थायमस, 7. एड्रनल्स।

इन ग्रन्थियों का कार्य शरीर में बहुत व्यापक है। मस्तिष्क, श्वास-प्रश्वास, पाचन, स्नायु आदि सभी विभागों के संचालन में हारमोन्स अपना प्रभाव रखते हैं। स्त्री-पुरूष का लिंगभेद इन्हीं ग्रन्थियों के कारण होता है शरीर में इन्हीं के हारमोन्स यौवन लाते

है। कामवासना पर भी ये अपना विशिष्ट प्रभाव रखती हैं। इनमें पिट्यूटरी मुख्य है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि –यह ग्रन्थि शरीर में बहुमुखी कार्य करती है। पिट्यूटरी हमारी खोपड़ी के भीतर मस्तिष्क के नीचे 'हायपोथैल्मस' के पास रहती है। हालांकि इसका साइज काफी छोटा, सिर्फ एक बड़े मटर या चने के दाने के समान होता है, लेकिन हमारे शरीर में इसका कार्य उतना ही अधिक महत्वपूर्ण है। पिट्यूटरी रानी ग्रन्थि कहलाती है।, क्योंकि सभी दूसरी नलिकाविहीन ग्रन्थियों के कार्य पर नियन्त्रण करती है। इस ग्रन्थि की तुलना उसी बिजलीघर से की जाती है जो सारे शहर में रोशनी, पंखे, रेडियो और कलकारखाने चलाने के लिए 'करैण्ट' भेजता है।

अकेली पिट्यूटरी ग्रन्थि से लगभग बारह तरह के रस–हारमोन्स–निकलते हैं। इनमें से अनेक हारमोन्स दूसरी अन्तः- स्रावी ग्रन्थियों को रस (हारमोन्स) स्राव करने का सन्देश देते हैं। जब कभी पिट्यूटरी के कार्य में कोई खराबी आ जाती है तो शरीर में कई तरह के विकार पैदा हो जाते हैं, शरीर की कई क्रियाएं अस्तव्यस्त हो जाती हैं।

पिट्यूटरी से एक हारमोन इस तरह का निकलता है जो रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) ऊंचा कर देता है। दूसरा एक ऐसा मूत्रल असर रखता है कि जिसके प्रभाव से बहुत पेशाब बनता है, फिर व्यक्ति को जरा-जरा सी देर में पेशाब जाना होता है। इस तरह शरीर में इस ग्रन्थि का कार्य बहुमुखी है।

पिट्यूटरी सदा कार्यरत रहती है–एक कारखाना है जो शान्तिकाल में जनसाधारण के लिए उनकी दैनिक आवश्यकताओं की चीजें बनाता है। पिट्यूटरी भी वे ही तत्व बनाती है जिनसे हमारा शरीर स्वस्थ्य और सन्तुलित रहता है। अर्थात् हमारा अच्छा स्वास्थ्य पिट्यूटरी की सही क्रियाशीलता पर निर्भर करता है।

इस पिट्यूटरी रूपी कारखाने की यह विशेषता है कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिए कोई खतरा या चुनौती या विषम परिस्थिति सामने आने पर पिट्यूटरी शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए बचाव की तैयारी करती है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि खतरा होने पर यह कारखाना युद्ध के समान–हथियार और गोलाबारूद बनाने लगता है।

प्रतिकूल परिस्थितियां–शारीरिक स्वास्थ्य के लिए जब कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित हो जाती है तो वह स्वास्थ्य के लिए एक चुनौती या धमकी होती है। मनोवैज्ञानिकों ने अपनी भाषा में उन परिस्थितियों या धमकियों को 'दबाव' कहा है। पिट्यूटरी ग्रन्थि पर अनेक प्रकार के दबावों की प्रतिक्रिया होती है। और सिर्फ पिट्यूटरी ग्रन्थि ही नहीं वरन् शरीर के दूसरे अंग और अवयव भी इन दबावों से प्रभावित होते है।

दबाव इतने अधिक प्रकार के होते हैं कि उनकी गणना करना यदि असम्भव नहीं तो बेहद कठिन जरूर है। और इन सभी दबावों के प्रभाव भी पिट्यूटरी पर भिन्न प्रकार से होते हैं, जैसे एक प्रकार के दबाव से एक खास हारमोन या कुछ खास हारमोन्स निकलते हैं। तो दूसरी तरह के दबाव से कुछ दूसरे हारमोन्स रिसते हैं।

एक दबाव का उदाहरण लीजिए–किसी भी रोग के कीटाणुओं का संक्रमण-दबाव होता है। (क्योंकि वह शरीर के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है) इस दबाव से प्रभावित होकर पिट्यूटरी ग्रन्थि कोई एक हारमोन छोड़ती है, जो शरीर में बचाव की तैयारी शुरू कर देता है। कीटाणु-संक्रमण से भिन्न और भी दबाव होते हैं, जैसे तेज धूप में चलना-फिरना या परिश्रम करना, कोई बर्फीली रात ठण्ड में बिताना, शक्ति से अधिक परिश्रम करना, परिस्थितियोंवश भूखा रहना, चोट लग जाना, किसी दवा का तेज असर हो जाना, शरीर के किसी भाग का बड़ा आपरेशन होना आदि बहुत प्रकार के दबाव होते हैं। और इस सभी से शरीर में अस्वस्थता अनुभव होती है।

परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकाला है कि सबसे अधिक शक्तिशाली दबाव मानसिक परिस्थितियों का पड़ता है। अर्थात् दुखकारी भावनाएं बड़ा जबरदस्त दबाव डालती है। ये दुखकारी भावनाएं भी पिट्यूटरी ग्रन्थि से एक अथवा एक से अधिक हारमोन्स निकालती हैं। यदि संयोगवश भावना उग्र रूप से दुखकारी है तो उसका प्रभाव भी दूसरी दबाव-स्थितियों से तीव्रतम और कई बार शरीर पर घातक पड़ता है। एक बहुश्रुत किम्वदन्ती के अनुसार कुछ मित्रों में भूत-प्रेतों पर बहस छिड़ गई एक पक्ष कहता था, भूत होते हैं। दूसरे पक्ष का कहना था, भूत कुछ नहीं केवल मन का वहम है। भूत-समर्थक पक्ष ने कहा, अगर तुम लोग भूत को नहीं मानतें हो तो एक आदमी आधी रात को श्मशान में जा कर कील गाड़ आओ। एक युवक इस शर्त के लिए तैयार हो गया। आधी रात को वह श्मशान में पहुंचा। दिल में घबराहट थी, साहस बटोरकर कील गाड़ी, लेकिन असावधानी से कील के साथ ही उसके कुर्ते का एक पल्ला भी वहां गड़ गया। उठकर चलने लगा तो कुर्ता कील ने पकड़ रखा था। वह समझा, बस भूत ने पकड़ लिया। भय की भावना का इतना तीव्र दबाव पड़ा कि बेचारे के वहीं प्राण निकल गए।

शरीर के भीतर युद्धस्तरीय संघर्ष

ऊपर जो कुछ हमने सूत्र रूप में कहा है, उसकी वास्तविक झांकी शरीर के भीतर होने वाले युद्धस्तरीय संघर्ष से मिलती है। शरीर में किसी रोग के कीटाणुओं ने

संक्रमण किया—मान लीजिए वे मलेरिया के कीटाणु हैं—तो शरीर में बेचैनी होती है, सिर दुखता है, जाड़ा लगता है, सारे शरीर में कुलन और बेचैनी होती है और बुखार चढ़ जाता है।

इन लक्षणों का रहस्य यह होता है कि कीटाणु हमारे शरीर और स्वास्थ्य के लिए शत्रु होतें है; और दुश्मन का हमला होने पर जिस तरह कोई भी देश शत्रु का मुकाबला करता है, ठीक उसी प्रकार हमार शरीर भी कीटाणु-आक्रमण के विरूद्ध अपने सारे हथियार संभालता है जैसे कि खून में श्वेत कणों की संख्या बहुत बढ़ जाती हैं इन श्वेत कणों में एक विशिष्ट जाति के कण होते हैं जिन्हें 'फैगोसाइट्स' कहतें हैं। ये फैगोसाइट्स कीटाणुओं को घेरकर खा जातें है। और इसी तरह की बहुत-सी क्रियाएं होती हैं। वस्तुतः यह संघर्ष लगभग वैसा ही होता है, जैसे युद्ध स्थल में दो सेनाएं लड़ती हैं जैसे लड़ाई के मैदान में दोनों ओर के बहुत-से सैनिक मारे जातें है। उसी तरह शरीर के बहुत-से कोष्ठ तथा दूसरी ओर के कीटाणु हताहत होते हैं। इन हताहतों का स्पष्ट प्रमाण हमें किसी फोड़े में देखने को मिलता है। फोड़ा पकने का अर्थ होता है कि वहां जमकर युद्ध हो रहा है, और फूटकर उसमें से मवाद निकलने लगता है तो यह मवाद और कुछ नही, युद्ध में हताहत सैनिक होते है।

कोई भी अवांछित दबाव पड़ने पर शरीर बचाव की तैयारी में संलग्न हो जाता है। —यह तथ्य कदाचित् चिकित्सा-वैज्ञानिकों को पहले भी ज्ञात था, लेकिन सन् 1936 में डा० एच० सैले ने अपनी शोधों द्वारा यह रहस्योद्घाटन किया कि शरीर में बचावपक्ष की कमान मुख्य रूप से हमारी नलिकाविहीन ग्रन्थियां संभालती हैं और इनमें भी रानी ग्रन्थि पिट्यूटरी खास हिस्सा लेती है।

'क' हारमोन—पिट्यूटरी ग्रन्थि पर दबाव के कारण जो हारमोन्स निकलते हैं उनमें एक विशिष्ट हारमोन होता है जिसे 'एस०टी०एच०' कहा जाता है। पाठकों की सुविधा के लिए हम इसका नाम 'क' हारमोन रख देते हैं। चूंकि 'क' एक महत्वपूर्ण हारमोन है इसलिए यह सीधा ही हमारे शरीर को भी प्रभावित करता है और 'एड्रनल' ग्रन्थियों को भी अपने हारमोन स्राव करने के लिए उकसाता है।

हमने ऊपर जो वर्णन बचाव-पक्ष की तैयारी का किया है वह सब इसी 'क' हारमोन की करामात होती है। वस्तुतः रोग-कीटाणु शरीर में घुसकर कोई हलचल नहीं पैदा करते। वे तो चोर की तरह मात्र शरीर में प्रवेश कर जातें हैं हंगामा तब मचता है जब मकान मालिक चोर को पकड़ने के लिए दौड़धूप करता है। 'क' हारमोन की हलचल के कारण ही सिरदर्द, हड़फुटन, बेचैनी, ज्वर आदि पैदा होते हैं यह भी हम ऊपर कह चुके हैं कि रोग-कीटाणुओं का दबाव जितना उग्र होता है बचाव-पक्ष की तैयारी भी उतनी ही सरगर्मी लिए हुए होती हैं। मामूली सर्दी-जुकाम में चूंकि

दबाव बहुत कम होता है अतः सामान्य रूप से तबियत अनमनी या अस्वस्थ होती है। मलेरिया या न्यूमोनिया में दबाव उग्र होता है इसलिए शरीर में अधिक कष्ट होता है और रोगी खाट पकड़ लेता है।

'क' हारमोन की हलचल पैदा करने की हरकत वस्तुतः हमारे स्वास्थ्य के हित में होती है, क्योंकि वह कीटाणुओं से शरीर की रक्षा के लिए यह कदम उठाता है। वह बात दूसरी है कि इस रक्षात्मक कार्य से सिरदर्द, हड़कल आदि लक्षण पैदा हो जातें हैं। जबकि यह अवांछनीय लक्षण पैदा करना 'क' हारमोन का उद्देश्य नहीं होता। ठीक वैसे ही जैसे फोड़ा चीरने में डाक्टर का उद्देश्य रोगी को आराम पहुंचाना होता हैं, पीड़ा देना नहीं। काश, कि यह हारमोन न होता, तो शायद मामूली सर्दी से ही आदमी मर जाया करता।

रोग-कीटाणुओं के समान ही, रोने-झींकने और असंतुष्ट रहने की ऋणात्मक (दुखकारी) भावनाओं के दबाव से भी 'क' हारमोन सक्रिय हो उठता है। कई बार कुछ व्यक्ति जो हमेशा ही अपने को अस्वास्थ्यकर लक्षणों में घिरा पाते हैं, उसका रहस्य वस्तुतः ये दुर्भावनाएं ही होती हैं। मान लीजिए 'केशव' एक ऐसा ही व्यक्ति है, उसे बहुत मामूली-सा जुकाम होता है, फलस्वरूप बहुत मामूली-सी मात्रा में 'क' हारमोन निकलता है। लेकिन इस मामूली जुकाम को भी केशव बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मानता है, अपने को दुर्भाग्य से घिरा समझता है। 'हाय, यह जुकाम मेरा पीछा नहीं छोड़ता', यह कहकर झींकता है। इसका फल यह होता है कि इन दुखकारी भावनाओं का दबाव पाकर 'क' हारमोन और अधिक मात्रा में निकलता है। शरीर की बेचैनी और परेशानी बढ़ जाती है और केशव मामूली जुकाम में ही न्यूमोनिया होने जैसा कष्ट पाने लगता है इस प्रक्रिया में यह बात ज़रा गौर से समझने की है कि केशव का जुकाम ठीक हो गया क्योंकि 'क' हारमोन के अतिरिक्त स्राव से कीटाणु-संक्रमण बहुत जल्दी नष्ट हो गया। लेकिन केशव स्वस्थ नहीं हो पाया। डाक्टर जांच करके देखता है और जुकाम का कोई लक्षण केशव में नहीं पाता। परन्तु केशव इसलिए स्वस्थ नहीं हो रहा है कि दुर्भावनाओं के दबाव से लगातार 'क' हारमोन निकलकर उसके शरीर में हंगामा मचाए हुए है।

केशव सरीखे बहुत-से लोग होते हैं जो कभी एक और कभी दूसरे रोगों के लक्षणों से अपने को घिरा पातें हैं, और इसका कारण मात्र यही होता है कि वे लगातार कभी एक और कभी दूसरी दुखकारी भावनाओं से चिपटे रहतें है। और इनके दबाव से निरन्तर उनका शरीर 'क' हारमोन के हंगामे से बेचैन रहता है।

पुराने रोग और लम्बी दुर्भावनाएं

अगर किसी व्यक्ति को कोई पुराना (किन्तु हल्का) रोग-संक्रमण है, जैसे बढ़े हुए टान्सिल या किसी दांत की जड़ खराब होना, तो इस हल्के दबाव से 'क' हारमोन भी हल्की मात्रा में ही निकलेगा और उसे एक-दो अस्वास्थ्यकर लक्षण बने रहेंगे। इसी हल्के पुराने दबाव की तरह जब लम्बे समय तक कोई व्यक्ति दुखकारी भावनाओं से आक्रान्त रहता है, तो भी 'क' हारमोन हल्की मात्रा में रिसता रहता है और वह व्यक्ति अस्वस्थ बना रहता है। यहां देखने की बात यह है कि दबाव मुख्य बात है–चाहे वह कीटाणु-संक्रमण के कारण हो अथवा भावनाओं के कारण। दोनों हालतों में फल एक-सा ही निकलता है।

हारमोन्स-सम्बन्धी ये सारे क्रियाकलाप प्रकाश में लाने के लिए मनोवैज्ञानिक लगातार वर्षों तक इन हारमोन्स के इन्जेक्शन जानवरों को लगाकर उनपर प्रतिक्रिया देखतें रहे हैं, साथ ही उन्होंने भय जैसी दुर्भावना और फाकाकशी जैसे बाह्य प्रभावों का भी पशुओं पर अध्ययन किया है। इन्हीं परीक्षणों से ये तथ्य प्रकाश में आए है जो हम पाठकों के सामने रख रहे हैं।

एक और अद्‌भुत हारमोन

'क' हारमोन के बाद भावनाओं के सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण हारमोन सामने आता है जो पिट्‌यूटरी ग्रन्थि से ही निकलता है। उसका संक्षिप्त नाम है 'ए-सी-टी-एच' हारमोन। पाठकों की सुविधा के लिए हम इसका नाम 'ख' हारमोन रखे देते हैं।

इस 'ख' हारमोन की विशेषता यह है कि यह 'क' हारमोन के पूरे प्रभाव को नष्ट कर देता है। संक्षेप में इसका कार्य यूं समझिए कि एक टायफायड ज्वर का रोगी है। टायफायड उसे उग्र रूप में है। तेज बुखार के साथ ही सिर दुखता है, पेट में भी कुलन है।, जोड़ों में दर्द हैं, सारे शरीर में बेचैनी और हड़कल है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका हैं, ये सारे लक्षण उस रोगी को 'क' हारमोन के प्रभाव से पैदा हुए हैं। उग्र कीटाणु-संक्रमण के दबाव से 'क' हारमोन ने भी तीव्र रक्षा-अभियान शुरू किया हुआ है।

ऐसी हालत में अगर उसे काफी अच्छी मात्रा में 'ख' हारमोन का इंजेक्शन शिरावेध द्वारा चढ़ा दिया जाता है तो चार-पांच घण्टों में ही रोगी की हालत बिल्कुल बदल जाएगी। उसका बुखार उतर जाएगा सिर हल्का हो जाएगा, पेट की चुभन गायब हो जाएगी, जोड़ो का दर्द मिट जाएगा, शरीर की बेचैनी और परेशानी हटकर

वह स्वाभाविक स्थिति में आ जाएगा। इतना ही नहीं, उसे अपने अन्दर कमजोरी की जगह बल मालूम पड़ेगा। वह आसानी से घूम-फिर सकेगा और एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह सब कुछ खा भी सकेगा। वह इस इंजेक्शन के प्रभाव से यह महसूस करने लगेगा कि जैसे उसे कभी टायफायड हुआ ही नहीं था। दूसरे देखने वाले लोग भी यही कहेंगे कि वह अब रोगमुक्त होकर पूर्ण स्वस्थ हो गया है।

जैसाकि हम ऊपर संकेत दे चुके हैं—इस जादू के समान करिश्मे का रहस्य यह है कि 'ख' हारमोन ने 'क' हारमोन के प्रभाव को नष्ट कर दिया अर्थात् बचाव-पक्ष की तैयारी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, किन्तु कीटाणु बदस्तूर शरीर में मौजूद रहे। बचावपक्ष समाप्त हो गया और कीटाणु रूपी शत्रु शरीर में बने हुए हैं, ऐसी स्थिति में भले ही रोगी अपने को भला-चंगा अनुभव करे, लेकिन कीटाणु उसके शरीर में अपना ताण्डव मचा देंगे। ऐसी हालत में उसकी आंतों में जख्म बन जाएंगे। वहां से भारी रक्तस्राव भी हो सकता है—और इन उपद्रवों से निश्चय ही अन्त बुरा होगा, रोगी मर जाएगा।

'ख' हारमोन का यह असर टायफायड के अलावा दूसरी जाति के कीटाणुओं के संक्रमण की दशा में भी यही होगा, अस्वास्थ्यकर लक्षण समाप्त हो जाएंगे और रोग बढ़कर रोगी मर जाएगा। इसीलिए औषधि रूप में इस हारमोन का प्रयोग डाक्टरों को बड़ी देख-भालकर करना पड़ता है।

इस स्थल पर यह दलील दी जा सकती है कि 'क' हारमोन द्वारा उत्पन्न लक्षण किसी प्रकार के कीटाणु-संक्रमण के कारण न होकर किसी दूसरे दबाव से हैं; तब तो 'ख' हारमोन के प्रभाव से कोई खतरा नहीं होगा। इस तरह के परीक्षण भी किए जा चुके हैं। दमा यदि कीटाणु-संक्रमण से नहीं है तो 'ख' हारमोन का प्रभाव उसके शरीर में रहेगा, यह प्रभाव समाप्त होते ही 'क' हारमोन की बचाव-सरगर्मियां फिर शुरू हो जाएंगी और व्यक्ति फिर अस्वास्थ्यकर लक्षणों से घिर जाएगा।

वास्तव में हारमोन्स के इन सब क्रियाकलापों का लेखाजोखा बहुत टैक्नीकल, पेचीदा और विस्तृत है, ज्यादा सूक्ष्म वर्णन पाठकों के लिए रुचिकर न होगा। इसलिए हम संक्षेप में मुद्दे की बात ही ले रहे हैं।

'ख' हारमोन 'क' हारमोन की तरह सीधा हमारे शरीर पर असर नहीं रखता है वरन् यह एड्रनल ग्रंथियों को उत्तेजित करता है। जो हो, यह 'ख' हारमोन शरीर के अस्वास्थ्यकर लक्षणों में राहत जरूर पहुंचाता है। लेकिन 'क' हारमोन की तरह इस 'ख' से भी कुछ अवांछित दबाव पड़ता है और उससे कुछ विशिष्ट लक्षण उत्पन्न होते हैं।

पेट या आंतों में जख्म हो जाना 'ख' हारमोन का प्रभाव होता है। जिन पशुओं

को अधिक समय तक 'ख' हारमोन दिया गया उन सभी को पेट के जख्म हो गए। मनुष्य भी इसके अपवाद नहीं हैं। और पेट के जख्म ही नहीं बल्कि फोड़े-फुन्सी हो जाना, टान्सिल पकना, मामूली-सी चोट में मवाद पड़ जाना, ये सभी लक्षण 'ख' हारमोन के अधिक पैदा होने के कारण होते हैं, क्योंकि 'ख' का प्रभाव शरीर में रोगों की प्रतिरोधक शक्ति (बचावपक्ष) को कमजोर बना लेता है।

ऐसी दुर्भावनाएं जो व्यक्ति में आक्रमणात्मक प्रवृत्ति पैदा कर देती हैं, खासतौर अधिक 'ख' हारमोन स्राव करने के लिए उत्तरदायी होती है। भारी असन्तोष, चिढ़न और कुढ़न ऐसी ही भावनाएं है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने यह मत स्थिर किया है कि अफसर लोग ऐसी भावनाओं के अधिक शिकार होते हैं, क्योंकि उन्हें तरह-तरह के लोगों से वास्ता पड़ता है और बहुत काम समेटने रहते हैं, अनेक तरह की समस्याओं में उलझना पड़ता है, इसलिए वे चिढ़न कुढ़न और आक्रमणात्मक प्रवृत्ति के शिकार हो जाते हैं। उनके शरीर में 'ख' हारमोन ज़्यादा बनता है। तब वे पेट के ज़ख्मों के भी शिकार हो सकतें हैं और उन्हें अनेक तरह की पाचन-सम्बन्धी बीमारियां घेरे रहती हैं।

कई बार डाक्टरों के पास माता-पिता अपने बच्चों को लेकर आते हैं और शिकायत करते हैं कि काफी अच्छा खाना-पीना देने के बावजूद भी बच्चों की तन्दुरुस्ती नहीं उभरती; वे दुर्बल और कमजोर ही बने रहते हैं। वस्तुतः ऐसे बच्चों का स्वास्थ्य न उभरने का कारण उनका पारिवारिक वातावरण होता है। जिस वातावरण में सभी लोग असन्तुष्ट, नाराज़ और क्षुब्ध रहतें हैं, ये बच्चे भी इसी वातावरण से प्रताड़ित होते हैं।

लम्बे समय तक 'ख' हारमोन-प्रताड़ित व्यक्ति

ऐसे लोग हमेशा अपनी ज़िन्दगी में असन्तुष्ट बने रहतें हैं। वे चीजों और बातों का आक्रामक ढंग से विरोध किया करते हैं। किसी भी बात पर वे जल्दी ही नाराज़ हो जाते हैं। मामूली-सी घटनाओं और बातों से उनका मिज़ाज उलट-पुलट हो जाता है। वे लम्बे समय तक दूसरों के प्रति मन में रंजिश बनाए रखते हैं। हरेक बात को अपनी इच्छा के मुताबिक करना चाहतें हैं। कोई नौकर हो या अपना बेटा, वे उसे अपने मन के मुताबिक बनाने के लिए उद्विग्न बने रहते हैं। ऐसे लोगों की किसी से पटरी नहीं बैठती।

डाक्टरों को कई बार ऐसे रोगी मिलते हैं कि जिनकी जिन्दगी बीमारियों की एक लम्बी जंजीर होती है, कभी छोटी और कभी बड़ी बीमारी उन्हें घेरे रहती है।

साथ ही वे मानसिक कुण्ठाओं से ग्रस्त रहते हैं। ऐसे व्यक्ति अद बदाकर गम गलत करने के लिए शराब का सहारा लेने लगते हैं। और तब उनकी हालत बद से बदतर हो जाती है क्योंकि पहले से ही 'ख' हारमोन के स्रावण से त्रस्त थे, शराब और अधिक 'ख' हारमोन का स्राव करती है। कहना न होगा कि ऐसे लोग प्रायः अल्पायु भी होते हैं।

आगामी शोधों की उत्सुकता

इस अध्याय में उदाहरणार्थ सिर्फ दो हारमोन्स का वर्णन किया गया है जो पिट्यूटरी ग्रन्थि से निकलते हैं। यह वर्णन भी संक्षिप्त सा है। एक से अधिक हारमोन्स निकलने में तथा कई हारमोन्स भिन्न-भिन्न अनुपात में निकलने में क्या स्थिति बनेगी, और वे किस किस्म के दबावों से प्रभवित होगें ये सब कुछ आगे की खोज का विषय है। सच तो यह है, चिकित्सा-क्षेत्र में नलिकाविहीन ग्रन्थियों के कार्य का अध्याय अभी नया ही खुला है और तत्सम्बन्धी जानकारी अभी शैशव में ही है।

5. भावनात्मक रुग्णता की सर्वोत्तम औषधि : सुखकारी भावनाएं

दुखकारी भावनाएं स्वास्थ्य को छिन्न-भिन्न कर देती हैं। यह रहस्य शताब्दियों से चिकित्सक लोग जानते थे। और चिकित्सक ही नहीं, आम लोग भी इस तथ्य से परिचित थे।

भावनाक्षोभ से उत्पन्न लक्षणों के लिए भी औषधियां बन गई हैं। शामक समूह की औषधियों (ट्रेन्क्वलाइज़र्स) इसी कार्य के लिए प्रयुक्त होती है। चिन्ताओं, परेशानियों से अभिभूत व्यक्ति जब सिरदर्द, बेचैनी, दिल की घबराहट जैसे लक्षणों से पीड़ित होता है, तो उसे किसी शामक औषधि की एक-दो गोली दे दी जाती है, और कुछ समय बाद वह इन लक्षणों से मुक्त हो जाता है। कदाचित् ये औषधियां भी 'ख' हारमोन के समान ही कार्य करती हैं अर्थात् 'क' हारमोन के प्रभाव को हटा देती हैं। लेकिन, सचाई यह है कि यह उपचार रोग का सही इलाज नहीं होता। सही इलाज का अर्थ है–रोग उत्पन्न करनेवाले कारणों को दूर करना। ऊपर कहे लक्षणों का कारण होती हैं दुखकारी भावनाएं। शामक औषधियों की गोली इन भावनाओं को दूर नहीं करती, सिर्फ उनसे उत्पन्न लक्षण हटाकर एक प्रकार से व्यक्ति को धोखा देती है। लेकिन धोखे वाली बात तो ज़्यादा समय नही चलती। फलतः इन शामक औषधियों का प्रभाव दूर होते ही लक्षण फिर प्रकट हो जाते हैं। इसके अलावा ये औषधियां शरीर के महत्वपूर्ण अवयवों जैसे दिल, गुर्दे, फेफड़े आदि के साथ भी छेड़छाड़ करती हैं जिससे कई बार शरीर को खतरा पैदा हो जाता है।

ईमानदार डाक्टर इन शामक औषधियों का प्रयोग बेहद जरूरी होने पर ही यदाकदा करते हैं– अन्यथा वे इन्हें न देना ही अच्छा समझते है। क्योंकि वे इन औषधियों के नकली प्रभाव को अच्छी तरह समझते हैं।

अच्छी भावनाएं उपयुक्त औषधि क्यों हैं (?)

नलिकाविहीन ग्रन्थियों तथा उनके हारमोन्स के बारे में हालांकि हम चिकित्सक लोग इस समय तक बहुत कुछ जान चुके हैं; लेकिन अभी उससे कहीं अधिक जानना शेष है। चिकित्सा-वैज्ञानिक अभी यह नहीं जान पाए हैं कि 'ख' हारमोन के बुरे प्रभाव को दूर कर किस तरह सिर्फ उसका अच्छा प्रभाव ग्रहण किया जा सके। लेकिन हमारा शरीर इस रहस्य को जानता है; हारमोन्स का सही दिशा में सन्तुलन कायम करने का मंत्र सम्भवतः प्रकृति ने हमारे शरीर को बता रखा है। और हम केवल सुखकारी भावनाएं पैदा करके ही उस मंत्र का लाभ उठा सकते हैं। दूसरे शब्दो में कह सकते हैं कि सुखकारी भावनाएं ही वह मूल मंत्र है जिनके द्वारा शरीर को सन्तुलित और अच्छे प्रभाव वाले हारमोन्स मिलते हैं।

सुखकारी भावनाओं के असर सही दिशा में उतने ही अधिक प्रभावकारी होते हैं, जितने दुखकारी भावनाएं गलत दिशा में अपना प्रभाव दिखाती हैं।

अशान्ति, थकावट, शरीर का भारीपन और गिरावट दुःखोत्पादक भावनाओं का प्रभाव होता है। शरीर का हल्कापन, चुस्ती, स्फूर्ति और प्रसाद सुखकारी भावनाओं का असर है। अतः यह स्वयंसिद्ध है कि दुखकारी भावनाओं से उत्पन्न बुरे प्रभाव को दूर करने की एकमात्र औषधि सुखोत्पादक भावनाएं ही हैं। इस सन्दर्भ में एक दृष्टान्त सुनिए।

सुखोत्पादक भावनाओं के चमत्कार

बात लगभग चालीस वर्ष पहले की है। लेखक का एक सहपाठी श्यामसुन्दर हाई स्कूल की परीक्षा में फेल हो गया। उसके फेल होने की किसी को आशा न थी; स्वयं श्यामसुन्दर भी अच्छे नम्बरों से पास होने की आशा लगाएं था। किन्तु जिस समाचारपत्र में हाई स्कूल का परीक्षा-परिणाम छपा था, उसमें उसका रोल नम्बर नहीं था। फेल होना श्यामसुन्दर को बड़ा आघातकारी लगा। जिस स्थान पर विद्यार्थी परीक्षा-फल देख रहे थे, वहां से उठना और अपने घर तक पहुंचना उसके लिए कठिन हो गया। कुछ मित्रों ने मिलकर उसे घर तक पहुंचाया वहां पहुंचकर वह खाट (बिस्तर) पर इस तरह लेट गया, जैसे महीनों का बीमार हो। इस हाल में उसके माता-पिता भी चिन्तित हो उठे। डाक्टर बुला लिया गया। डाक्टर ने फल दूध आदि पौष्टिक वस्तुएं खिलाने की और विश्राम कराने की सम्मति दी; किन्तु श्यामसुन्दर की हालत में जल्दी कोई सुधार नजर नहीं आया। वह चलने-फिरने में बहुत कमजोरी अनुभव

करता था; भोजन के लिए कोई रूचि उत्पन्न न होती थी माता-पिता उसे आग्रह करके खिलाते-पिलाते थे।

और फिर आठ दिन बाद वह चमत्कार हुआ। स्कूल में गजट आया, जिसमें श्यामसुन्दर सेकण्ड डिवीज़न से पास था। मित्र लोग दौड़े-दौड़े उसके घर पहुंचे और उसे शुभ समाचार सुनाया। खबर सुनते ही उसकी दुनिया बदल गई मित्रों ने ज्यों ही जाकर कहा, "श्यामसुन्दर! गजट आया है, तू तो सेकण्ड डिवीज़न में पास है!" यह सुनते ही 'ऐं' कहता हुआ श्यामसुन्दर कूदकर बिस्तर से खड़ा हो गया और दोस्तों के साथ गजट देखने स्कूल चल पड़ा। उसके घर से स्कूल लगभग एक मील दूर था। श्यामसुन्दर पूरे रास्ते पैदल चलकर स्कूल पहुंच गया। न कोई थकावट, न कमजोरी। उसकी सारी बीमारी गायब हो गई। मित्रों के साथ खूब मिठाई खाई और इण्टर की किताबें लेने बुकसेलर के यहां पहुंच गया। फिर उसे न तो बिस्तर पर लेटने की जरूरत महसूस हुई और न फलों के रस और दूध की।

निराशा की दुःखोत्पादक भावना ने उसे जहां बुरी तरह रोगी बना दिया था, सफलता की सुखोत्पादक भावना ने जीवन चुस्त-दुरुस्त कर दिया।

अमेरिका के एक डाक्टर क्लारेन्स डब्ल्यू लैब के एक रोगी को बहुत शिकायतें थीं। सिरदर्द, थकावट, ऊँचा रक्तचाप, तेज नाड़ी तथा हाजमें की शिकायतें स्थायी रूप से रहती थी। डाक्टर लैब की अच्छी से अच्छी औषधि से भी कोई फायदा नहीं हुआ। अन्त में डाक्टर ने उस रोगी से कहा, "तुम भावनाओं के दबाव के रोगी हो, अन्दर ही अन्दर किसी अप्रिय विचार से घुटते रहते हो। मुनासिब है कि तुम अपने मन की बात खुलकर कहो, वर्ना इन विकारों से पीछा नही छूटेगा।"

शुरू में रोगी यही कहता रहा, "मेरे मन में कोई मैल नही है," लेकिन अन्त में उसे डाक्टर के सामने अपना भेद खोलना पड़ा। रहस्य यह था कि उसका पिता बहुत बड़ी जायदाद छोड़कर मरा था, और उसे जायदाद का प्रबन्धक नियुक्त कर गया था। रोगी का छोटा भाई यूरोप में रहता था। उस भाई के पास वह जायदाद की आमदनी का बहुत थोड़ा भाग भेजा करता था; बड़ा हिस्सा खुद हड़प लेता था। डा० लैब ने इस रोगी से आग्रह किया कि वह अपने भाई को सारी बातें साफ-साफ लिख दे, और हजम किया हुआ रूपया लौटा दे। लेकिन रोगी इस बात पर तैयार नहीं हुआ, कहने लगा, "मैं कैसे अपने भाई को अपनी बेईमानी की बात लिख सकता हूं, वह मुझपर बहुत विश्वास करता है।

डा० लैंब गिरजे के सलाहकार भी थे। वे बराबर उस रोगी को समझाते रहे। अन्त में वह व्यक्ति तैयार हो गया। उसने अपने छोटे भाई को एक पत्र लिखा और बड़ी रकम का एक चैक उसके साथ नत्थी कर दिया। पत्र छोड़कर मानो उस व्यक्ति

ने सन्तोष की सांस लीं। वह डाक्टर की आंखों में आंखें डालकर कहने लगा "धन्यवाद, डाक्टर साहब! मैं महसूस कर रहा हूं जैसे कोई बहुत भारी बोझ मेरे सिर से उत्तर गया है। मैं बहुत हल्कापन अनुभव कर रहा हूं। मुझे विश्वास हो रहा है कि मेरी सारी तकलीफें जाती रही हैं और मैं स्वस्थ हो गया हूं। और वास्तव में ही उस दिन के बाद किसी कष्टदायक लक्षण ने उसे नही सताया।

यह था अच्छी और बुरी भावनाओं का प्रभाव। डा० लैब का यह रोगी बेईमानी की दुःखोत्पादक भावना से पीड़ित था। ईमानदारी का काम करके उसने सुखोत्पादक भावनाएं पैदा की और लम्बे अस्वास्थ्य से छुटकारा पा लिया।

उपर्युक्त दोनों ही घटनाओं में सुखोत्पादक भावनाओं के चमत्कारपूर्ण कार्य की झांकी मिलती है। इस बात में दो मत नही है कि अच्छे स्वास्थ्य और अच्छे जीवन से बढ़कर इस दुनिया में और कोई नियामृत नहीं है। और हम सुखोत्पादक भावनाओं के माध्यम से इस नियामत को हासिल कर सकते हैं।

आज तक लोगों को जिस प्रकार की शिक्षा मिलती रही है उससे व्यक्ति का ज्ञान बढ़ता है, बुद्धि प्रशिक्षित होती है। किन्तु एक व्यक्ति बुद्धिमान और ज्ञानवान होते हुए भी दुःखोत्पादक भावनाओं का शिकार हो सकता है। बुद्धिमान लोगों का जीवन भी कष्टपूर्ण बन जाता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति कम ज्ञानवान होकर सुखकारी भावनाओं वाला हो तो उसका जीवन अधिक मधुर होगा। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि ज्ञान-अर्जन की अपेक्षा अच्छी भावनाएं पैदा करने का अभ्यास ज़्यादा सरल है।

गलत रुख–सही रुख

कई बार जब भावना-क्षोभ से पीड़ित लोगों को यह सलाह दी जाती है "साहब! चिन्ता छोड़िए, प्रसन्न रहिए," तो वे इस परामर्श को सही अर्थों में नही ले पाते। उनकी दलील होती है, "जब तक समस्याएं और परेशानियां सामने हैं, कोई खुश और अच्छा-भला कैसे रह सकता है?" और यह उन लोगों का गलत रुख होता है। वे अपने रोग का गलत निदान करते हैं और फिर गलत ही इलाज भी करते हैं।

वस्तुत: किसी भी समस्या को हल करने के लिए, किसी भी विषम स्थिति पर काबू पाने के लिए साहस, आत्मविश्वास, दृढ़ता और सूझबूझ की आवश्यकता होती है। ये सभी सुखकारी भावनाएं हैं जो शरीर को सन्तुलित रखती हैं, व्यक्ति का मानसिक बल लाती हैं। प्रसन्नता और खुशमिज़ाजी के माध्यम से ही इन भावनाओं को दीप्त किया जाता है; अन्यथा ग़म में गर्क होकर तो आदमी निराशा में डूबा रहता

है, थका-मांदा रहता है, वह सही दिशा मे सोच नहीं पाता। उसकी समस्या प्रायः अधर में ही लटकी रहती है। प्रायः जनसाधारण यह कल्पना करते हैं कि कोई दैवी शक्ति उनकी समस्या हल कर दे, उन्हें गम से उबार दे, तभी वे प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। काश कि वे जानते कि वह देवी शक्ति सुखकारी भावनाओं में ही निहित है।

सुखोत्पादक भावनाओं का दोहरा कार्य

सुखकारी भावनाओं के सम्बन्ध में इस बात [redacted] भूलना चाहिए कि इनका काम दोहरा होता है। पहले तो ये शरीर से दुखकारी भावनाओं के उस प्रभाव को हटाती हैं। जो स्वास्थ्य पर अवांछित और कष्टकर प्रभाव पैदा कर रहा होता है। दूसरे चरण में ये पिट्यूटरी ग्रन्थि को उकसाकर अन्तःस्रावी ग्रंथियों से इतनी सन्तुलित मात्रा में कुछ विशिष्ट हारमोन्स का स्राव कराती हैं कि व्यक्ति शरीर और मन में आन्नद अनुभव करता है। और वह कह उठता हैं–'वाकई जिन्दगी में कुछ मजा आ रहा है।'

कल्पना कीजिए कि शरीर में बिजली के दो स्विच बोर्ड लगे हैं। एक दुखकारी भावनाओं का है, और दूसरा सुखकारी भावनाओं का। दुखकारी भावनाओं ने अपने बोर्ड के कुछ खटके दबाए–तो जो रोशनी हुई वह तेज है; आंखों को चुभने वाली है; शरीर में गर्मी और जलन पैदा कर रही है; रोशनी का रंग भी अच्छा नहीं लग रहा। कुल मिलाकर वातावरण क्षुब्ध, तीखा और असहनीय-सा बन गया।

अब सुखकारी भावनाएं आईं। दुखकारी भावनाओं ने जो स्विच 'ऑन' किए थें, उन्हें सुखकारी भावनाओं ने ऑफ कर दिया। और फिर अपने स्विच बोर्ड के खटके दबाएं। एक हल्का ऊदा-ऊदा प्रकाश फैलाने लगा; आंखें ने ठण्डक और आराम महसूस किया; शरीर में स्निग्धता और हल्कापन आने लगा; सारा वातावरण एक मादकता और सजावट से भर गया; चारों तरफ एक अच्छा-भलापन और लुत्फ फैल गया।

6. भावनाओं के दो भेद

भावनाओं के रहस्य और शरीर पर उनके प्रभाव को समझने के लिए उनके दो भेदों के बारे में भी जानना बहुत ज़रूरी है। दरअसल व्यक्ति हमेशा दो तरह की भावनाओं से आक्रांत रहता है :

(1) गहरी भावनाएं, (2) ऊपरी भावनाएं।

गहरी भावनाओं से मतलब हैं, मन में छिपी हुई ऐसी भावनाएं या बातें जो ऊपर से तब तक दूसरों की पकड़ में नही आती जब तक कि दूसरा व्यक्ति मन की गहराइयों में झांकने की क्षमता न रखता हो। लेकिन ऊपरी भावनाओं का प्रभाव सबको बाहरी रूप से दिखाई देता है, जैसे–क्रोध। उसे सब लोग समझते और पहचानते हैं।

गहरी और ऊपरी भावनाओं को एक उदाहरण से समझिए। मान लीजिए कि आज सुबह आपकी कोई ऐसी कीमती चीज खो गई जो बहुत दुर्लभ थी। आपने सबकी नजरों से बचाकर उसे सुरक्षित रखा था। उसके खोने की आप किसी से चर्चा भी नही कर सकते। इस क्षति की पूर्ति आप जीवन में फिर कर पाएंगे या नही इसमें सन्देह है। अब आप चिन्तित हैं, गमगीन हैं, नुकसान का पछतावा हो रहा है, परन्तु इन सब बातों को आप किसी पर प्रकट भी नहीं करना चाहते, मौन रूप से सब कुछ सहते हैं। इन्हें गहरी भावनाएं कहा जाता हैं। आप कई-कई घण्टे या कई-कई दिनों तक इन भावनाओं से पीड़ित रह सकतें हैं; और चूंकि कोई भी भावना शरीर में बिना परिवर्तन लाए नहीं रहती, यह गहरी भावनाएं भी शरीर पर असर करती हैं। आपकी पेशियों में तनाव आ जाएगा, जिसके फलस्वरूप शरीर के किसी भाग में पीड़ा होने लगेगी। अन्तःस्रावी ग्रन्थियां भी उत्तेजित होकर कुछ अधिक स्राव छोड़ेंगी जिससे शरीर में बेचैनी और परेशानी अनुभव होगी और इन परिवर्तनों के कारण आप अपने को निश्चय ही रोगी अनुभव करेंगे।

अब इस स्थिति के दौरान ऐसे क्षण और घण्टे भी आएंगे जब कुछ दूसरी बातों और विषयों पर आपका ध्यान जाएगा; निश्चय ही उनपर सोच-विचार करना आपकी ऊपरी भावनाएं होंगी। उदाहरण के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के सामने आप खुशमिज़ाजी और प्रसन्नता दिखाएंगे; हालांकि गहरी चिन्ता आपको भीतर ही भीतर लगातार साल रही है, किन्तु दूसरे से बातचीत के दौरान, आप हंसी-मजाक भी कर रहे हैं, खुशी भी जाहिर कर रहे हैं। दूसरा आदमी यही समझ रहा है। कि आप प्रसन्नचित्त हैं; किन्तु गहरी भावना के उछल-कूद के कारण भीतर से आपके मन की जो स्थिति है उसे आप प्रत्येक क्षण अनुभव कर रहे हैं, भीतर के खोखलेपन का आभास आपको प्रतिक्षण हो रहा है।

उस व्यक्ति के चले जाने के बाद आप जिस ऊपरी भावना का प्रदर्शन कर रहे थे–वह समाप्त हो जाती है और आप फिर गहरी भावना के भंवरजाल में फंस जाते हैं।

गहरी भावनाएं अधिक प्रभावकारी

ऊपरी भावनाओं की अपेक्षा गहरी भावनाओं का असर कहीं अधिक होता है, क्योंकि ये गहरी भावनाएं स्थायी होती हैं और बहुत लम्बे समय तक चलती रहती हैं; फलतः अधिक और स्थायी रूग्णता पैदा हो जाती है। कई बार ये गहरी भावनाएं सारी ज़िन्दगी व्यक्ति का पीछा नहीं छोड़तीं। और इसीलिए अनेक व्यक्ति तरह-तरह के भावनाजन्य रोगों से सारी उम्र ही परेशान रहते हैं।

गहरी भावनाएं क्यों ?

मन में इन गहरी भावनाओं के घुस बैठने के एक नहीं अनेक कारण होते हैं।

–कई बार बचपन की किसी दुर्घटना के कारण भय की भावना स्थायी रूप से मन में बैठ जाती है।

–बचपन में मानसिक रूप से उचित पालन-पोषण न होना। अर्थात् जब बच्चा प्रेम नहीं पाता, तो उसे अपने अधिकार नही मिलते, उस के व्यक्तित्व को स्वीकारा नही जाता, वह अपने को असुरक्षित समझता है, अपने को उपेक्षित पाता है। जब उसे हीन और अकर्मण्य व्यक्ति समझा जाता है, तब निश्चय ही उसके मन में गहरी दुःखोत्पादक भावनाएं उत्पन्न हो जाती है।

–विचारों और धारणाओं की अपरिपक्वता भी गलत भावनाएं पैदा करने में

एक बड़ा हिस्सा लेती हैं और अपरिपक्वता का शिकार व्यक्ति जब-तब ऐसी गहरी भावनाओं से पीड़ित रहता है।

सुखकारक गहरी भावनाएं

वह व्यक्ति संसार में सबसे अधिक भाग्यशाली है जिसके पास गहरी सुखोत्पादक भावनाओं का खजाना है। निश्चय ही वह संसार में सच्चा दौलतमन्द आदमी है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चे में आरम्भ से ही सुखोत्पादक भावनाओं को केन्द्रित करना चाहिए। यह वरदान प्राप्त हो जाने पर कदाचित् उन्हें फिर संसार में और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाएगा।

किन्तु जिन व्यक्तियों के पास यह दौलत नहीं है—वे बिना ऐसी भावनाएं पाए ही बड़े हो गए हैं, तो भी अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा है। वे अब भी उन्हें पा सकते हैं और संसार के सच्चे धनी सुखी व्यक्ति बन सकते हैं। वस्तुतः यह सब अभ्यास, रुचि और लगन की बात होती है। इन भावनाओं को पैदा करने की चर्चा हमने अगले अध्यायों में की है।

7. भावनाओं पर नियन्त्रण

कई बार ऐसा समझा जाता है कि आज के युग में चूंकि जीवन के लिए संघर्ष बढ़ गया है; इसलिए लोग भावनाजन्य रुग्णता के शिकार अधिक होते हैं। लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। अपितु प्राचीनतम काल से लोग इस रुग्णता के शिकार होते आए हैं।

दुःखोत्पादक भावनाओं से आक्रान्त होने पर शरीर में कैसे-कैसे परिवर्तन आते हैं और कैसे रोगसूचक लक्षण पैदा हो जाते हैं।, इसका वर्णन पाठक पिछले अध्यायों में पढ़ चुके है। दुःखोत्पादक भावनाओं के बारे में पाठको की यह धारणा भी बन सकती है कि जिस व्यक्ति के जीवन में अधिक बाधाओं और परेशानियों का सामना करना पड़ता है–वह भावनात्मक रुग्णता का अधिक शिकार होता है और जिस व्यक्ति का जीवन आराम और आसानियों में व्यतीत होता है उसे भावनात्मक रूप से रुग्ण होने की नौबत नहीं आती। लेकिन यह हिसाब-किताब सही नहीं है। एक बार को यह बात सही हो सकती है कि अधिक परेशानियां भावना-रुग्णता लाने में सहायक होती हैं। लेकिन बहुतायत से ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं कि जिन्हें जीवन में कोई खास कष्ट या अभाव नहीं होता, लेकिन फिर भी वे भावनात्मक रुग्णता के शिकार रहते हैं।

वस्तुतः इसका रहस्य यह है कि हम अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करना नहीं जानते। इस नियंत्रण की हमें कोई शिक्षा भी नहीं मिलती। अपितु समाज में रात-दिन हमें जिस ढंग के व्यक्तियों से सम्पर्क करना पड़ता है, उनका व्यवहार और अधिक भावनात्मक क्षोभ पैदा कर देता है। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति को अर्थहानि उठानी पड़ी है अथवा किसी प्रियजन की मृत्यु का शोक है, तो ऐसी स्थिति में सहानुभूति-प्रदर्शन के लिए आने वाले लोग कई बार बेतुकी बातें भी करते हैं।

एक व्यक्ति कहता है–"कोई बात नहीं साहब, छोड़िए दुःख-दर्द को, ये तकलीफें तो जिन्दगी के साथ लगी ही रहती हैं। अब आगे की बातें देखिए; नये उत्साह से

फिर काम शुरू कीजिए, भगवान सबकी मदद करता है।"

तभी एक दूसरे साहब कहते हैं–"क्यों नहीं साहब, दुःख तो होना स्वाभाविक ही है, सारी जिन्दगी की कमाई खत्म हो गई बेचारा करे तो क्या करे; अथवा अमुक व्यक्ति के मर जाने से तो इनके हाथ ही टूट गए; सारा खेल ही बिगड़ गया। अब आखिर यह भी कहां तक हिम्मत कर सकते हैं; अगर भाग्य ही पलट जाए तो बात दूसरी है।"

स्पष्ट है कि दूसरे सज्जन का फतवा हतोत्साहित करने वाला और भावना-क्षोभ पैदा करने वाला है, किन्तु कुछ लोग इस तरह की बातें करने में अपनी बुद्धिमानी और व्यवहारकुशलता समझते हैं। वस्तुतः ऐसे लोग कुछ धूर्तबुद्धि के होते हैं सामान्य जन भी ऐसे अवसरों पर कोई बुद्धिमत्तापूर्ण बातें नहीं करते अपितु उनकी बातें भी भावना-क्षोभ पैदा करने वाली ही होती हैं। जीवन में प्रतिदिन आने वाली कठिनाइयों (जो सभी के जीवन में आती हैं) से जूझते हुए भी सुखकारी भावनाएं किस तरह पैदा करें इस बात से प्रायः लोग अनभिज्ञ होते हैं।

गीताकार ने व्यक्ति को भावना-क्षोभ से दूर रखने का प्रयत्न किया। गीता का यह बहुप्रचलित श्लोक :

'दुःखेषु अनुद्विग्नमनः सुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।'

भावनाक्षोभ न बढ़ने देने की ओर ही संकेत करता है। श्लोक का अर्थ है : 'स्थिरबुद्धि वही व्यक्ति कहा जाता है जो दुःखों में मन को उद्विग्न न होने दे और सुखों में अपनी इच्छाओं को अधिक न बढ़ने दे।'

किन्तु इस संदर्भ में इस तथ्य पर भी विचार करना होगा कि संसार का कोई भी धर्म या आध्यात्मवाद भावना-क्षोभ दूर करने की दिशा में सफल नहीं हो पाया है। यूं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि से दूर रहने का उपदेश सभी धर्मों में दिया गया है क्योंकि इनसे दुःखोत्पादक भावनाओं का जन्म होता है; लेकिन फिर भी धर्मनिष्ठ और आध्यात्मवादी व्यक्ति भावना-नियंत्रण नही सीख पाए। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रायः धर्म वर्तमान सांसारिक जीवन की उपेक्षा करके परलोक सुधारने की बात करते हैं। वर्तमान जीवन को तो वे क्षणभंगुर कहते हैं। संसार को मिथ्या और मायाजाल बताते हैं। और अन्त में संसार से विरक्त हो जाने की सलाह से अधिक और उनके पास कुछ नहीं है। शरीर को नश्वर कहकर उसकी उपेक्षा करना तो प्रत्यक्ष रूप से जीवन की उपेक्षा है। जब कि सच्चाई यह है कि जीवन शरीर के माध्यम से ही अस्तित्व में आता है, शरीर के साथ ही जीवन समाप्त हो जाता है।

इस स्थल पर रामायणकालीन राजा जनक का उदाहरण अवश्य उल्लेखनीय है। सुलझे विचारों की दृष्टि से जनकजी कदाचित् एक आदर्श पुरूष थे। उनके सम्बन्ध में अनेक आख्यान ऐसे आते हैं; जिनसे यह प्रकट होता है कि उनपर सुख-दुःख का असर नही होता था। इसी गुण के कारण उन्हें 'विदेह' कहा जाता था। विदेह का अर्थ यहां यही है कि 'जिसकी देह पर भावनाओं का प्रभाव न हो'। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वे जीवन की घटनाओं को एक दर्शकीय दृष्टि से देखते थे; उनसे स्वयं प्रभावित नहीं होते। बहुत कुछ वैसे ही जैसे हम मनोरंजन के लिए कोई नाटक या सिनेमा देख आते हैं और बाद को फिल्म में दिखाई जाने वाली घटनाओं का हमारे मन या शरीर पर कोई खास प्रभाव नहीं रह जाता।

धार्मिक ग्रन्थों में जितेन्द्रिय होने की बड़ी वकालत की गई है। लेकिन इन्द्रियों को जीतने की अपेक्षा भावनाओं को जीतना ज्यादा जरूरी हैं। जनकजी सुख-दुख से इसीलिए परे थे क्योंकि वे 'भावनाजित्' थे।

हमारे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में भी धर्म और अध्यात्म की काफी चर्चा मिलती है। लेकिन आयुर्वेदप्रणेताओं ने शरीर की उपेक्षा नही की है उनका कथन है कि :

"सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।"

अर्थात् और सभी बातों को छोड़कर पहले शरीर का पालन करना चाहिए, क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य के अभाव में सभी कुछ अभावमय हो जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान भी शरीर को प्रधानता देता है। बाहरी (रोगादि) कारणों के अतिरिक्त मन ही एक ऐसी वस्तु है जो शरीर पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालती है और यह बात पाठकों के समक्ष स्पष्ट की जा चुकी है कि दुःखोत्पादक भावनाएं शरीर को रोगी बनाती हैं और सुखोत्पादक भावनाएं उसे उत्तम स्वास्थ्य देती हैं। अतएव दुःखोत्पादक भावनाओं को जीतकर सुखोत्पादक भावनाएं पैदा करने की कला मनुष्य को आनी ही चाहिए

लेकिन जैसा संकेत हम पीछे भी दे आए हैं इस कला को सीखने का न तो कोई स्कूल है और न और कोई संगठित संस्था है। हो सकता है कि काफी शैक्षणिक उन्नति के बाद आगे आने वाली पीढ़ियां दूसरे विषयों की तरह भावनाओं का नियंत्रण भी स्कूलों में पढ़ाने लगें। किन्तु प्रश्न इस समय का हैं। अब जब आप इस पुस्तक में इस विषय को काफी दूर तक पढ़ चुके हैं तो निश्चय ही आप लोग इस बात के लिए उत्सुक होंगे कि बहरहाल, मनोवैज्ञानिकों की खोज इस विषय में पाठकों को कौन-सा रास्ता सुझाती है। इसके लिए आप थोड़ी-सी पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन कीजिए :

पारिवारिक जीवन का प्रभाव–शिक्षाशास्त्रियों का यह मत है कि व्यक्ति स्कूल-कालेजों में जाकर अलबत्ता काफी शिक्षित होता है, लेकिन इन शिक्षा-संस्थाओं से कहीं अधिक प्रभाव उस परिवार का पड़ता है जहां उसका पूरा पालन-पोषण हुआ होता है। और इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि हजारों-लाखों परिवार ऐसे हैं जिनके व्यवहार और वातावरण का प्रभाव बच्चों पर उल्टा और विनाशकारी पड़ता है; शायद गिनेचुने परिवार ही ऐसे निकलेंगे जहां बच्चों को सही मनोवैज्ञानिक दिशा मिलती हो; अन्यथा सभी परिवार भावनाओं के दबाव से पीड़ित रहते हैं। इस दृष्टि से स्वस्थ मानसिक विकास में पारिवारिक जीवन बाधक होता है।

मित्रों का प्रभाव –परिवार के बाद व्यक्ति के मन और चरित्र पर प्रभाव डालने वाला उसके मित्रों का क्षेत्र होता है, जिनके साथ वह खेलता है, बातचीत करता है, उनके पास आता-जाता है, उनके साथ काम करता है, लड़ता-झगड़ताा भी है और फिर स्नेह भी उन्हीं से करता है। व्यक्ति का यह मित्र-क्षेत्र भी सामान्य स्तर का ही होता है। वह इनसे भावनाओं के सम्बन्ध में कोई दिशा-निर्देश अथवा कोई तत्व-महत्व की बात हासिल नहीं कर पाता। किन्तु मित्रों के अतिरिक्त जीवन के सम्पर्क में आने वाले कुछ लेखक भी होते हैं, जो अपनी पुस्तकों द्वारा किसी भी व्यक्ति के नज़दीक पहुंचते हैं। जब-तब ऐसा ज़रूर होता है कि किसी लेखक की रचनाएं व्यक्ति पर काफी प्रभाव डालती है–उसके जीवन की दिशा बदल देती है, उसे जागरूक और उदार बनाती हैं। फिर भी साहित्य पढ़कर अपनी भावनाओं और प्रवृत्तियों में अन्तर लाने वाले व्यक्ति कम ही होते हैं। कई बार बहुत आदर्शवादी रचनाएं व्यक्ति के मन पर बोझिल भी हो जाती है।

स्कूल और कालेजों का प्रभाव–तीसरे नम्बर पर हमारी शिक्षा-संस्थाओं का प्रभाव आता है। किन्तु यहां भी भावना-नियन्त्रण की दिशा में कोई प्रयत्न नज़र नहीं आता। बल्कि जैसा आजकल देखने में आता है, विद्यार्थियों में उद्दंडता और बगावत बढ़ती जा रही है। अब इसके लिए किसे उत्तरदायी ठहराया जाए यह एक टेढ़ा प्रश्न है। इसका विवेचन करना यहां हमारा विषय नहीं है। किन्तु, समय को देखते हुए इस बात की बेहद जरूरत है कि छात्रों को जीवन-निर्माण-सम्बन्धी शिक्षा की नींव बहुत प्रारंभ से रखी जानी चाहिए; तभी व्यक्ति जीवन को पूर्णता के साथ जीना सीख सकता है। यूं यदि कोई ज़िन्दगी को परेशानियों में घसीटता हुआ भावनाओं के बोझ से लदा सौ वर्ष की आयु भी पाए तो उसका कोई अर्थ नही होता।

धर्म का प्रभाव– जिस धर्म को भी कोई व्यक्ति मानता हो उसका प्रभाव भी उसके जीवन पर अनिवार्य रूप से पड़ता है; किन्तु भावना-नियंत्रण की दिशा में धार्मिक प्रभाव भी उसकी कोई सहायता नहीं कर पाता। उल्टा यहां तक देख जाता है कि

कई बार व्यक्ति के अन्दर अपने धर्म के प्रति कट्टरता और कठमुल्लापन आ जाता है, जिससे वह दूसरों के धर्म के प्रति असहिष्णु हो उठता है। निश्चय ही असहिष्णुता एक दुःखोत्पादक भावना है। कदाचित् ही कोई ऐसा धर्म हो जिसमें उदारता मिलती हो, वर्ना सभी धर्म व्यक्ति को एक घेरे में बाँधकर केवल कूपमण्डूक बना देते है। फल वही होता है–व्यक्ति अस्वस्थ और दुःखोत्पादक भावनाओं का शिकार बना रहता है।

भावनाओं का नियन्त्रण क्या है ?

भावनाओं का नियंत्रण आखिर क्या है ? और कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? यह प्रश्न इस स्थल पर पाठकों के मन में उठ सकता है। इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हम यहां पाठकों को यह बता देना चाहते हैं कि यह कोई बड़ी तपस्या नही है, किसी किले को जीतने के समान कोई भारी काम नहीं है।

भावनाओं के नियंत्रण का अर्थ बहुत सरल है–अर्थात् समझदारी और सूझबूझ से काम लेना। पिछले अध्यायों में हमने इसके लिए 'परिपक्वता' शब्द भी इस्तेमाल किया है। समझदारी और परिपक्वता एक ही ध्वनि के द्योतक है। मनोवैज्ञानिकों ने भावनाओं के नियंत्रण अथवा समझदारी की व्याख्या अपने शब्दो में इस तरह की है–"जीवन की परिस्थितियों के प्रति ऐसे आचरण करना जो लाभदायक हों–इसे ही समझदारी कहते हैं। किसी बच्चे की तरह आचरण करने से 'फल' अच्छे नहीं निकलते, क्योंकि वह नासमझी के आचरण करता है। ऐसे कार्य बचपने के कार्य कहलाते हैं।

सोच-विचार, तर्क और युक्तियों से व्यक्ति को अपने अन्दर समझदारी पैदा करनी होती है।

किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने अपने निरीक्षण द्वारा एक और तथ्य पर प्रकाश डाला है कि संसार में बहुत थोड़े लोग ऐसे मिलते हैं जो सभी मौकों पर समझदारी से काम लेते हैं–लेकिन बहुत बार इन व्यक्तियों के जीवन में भी वे अवसर आ जाते हैं कि जहां वे बचपने का आचरण कर गुजरते है। इस अपवाद से बड़े-बड़े महापुरुष भी नही बच पाए हैं–राम, लक्ष्मण, कृष्ण, गांधी, हिटलर, जवाहर लाल नेहरू, स्तालिन आदि अनेक नामांकित पुरूषों के जीवन में अनेक ऐसे स्थल आए हैं जहां उन्होंने बचपने के आचरण किए हैं और दुःखोत्पादक भावनाओं के शिकार हुए हैं। मनोवैज्ञानिक ऐसी बचपने के आचरणों का एक ही कारण बताते हैं कि व्यक्ति को शुरू से इस विषय की कोई संगठित शिक्षा नही मिलती।

जो हो, नासमझी के उदाहरण सामान्य लोगों के जीवन में इतने अधिक मिल

सकते हैं कि उनके उल्लेख से काफी मोटे-मोटे ग्रन्थ तैयार हो जाएंगे। कोई वर्ग इन आचरणों का अपवाद नहीं होता अफसर, व्यापारी, शिक्षक, वकील, दलाल और नेता, पिता, पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, नौकर-मालिक, डाक्टर और मरीज़–गरज़ यह कि सभी क्षेत्रों के लोग कुछ मौकों पर और कुछ अधिक मौकों पर नासमझी के आचरणों द्वारा भावनात्मक रुग्णता के शिकार होते देखे जाते हैं।

समझदारी पैदा करने वाले घटक

परिपक्वता या समझदारी लाने के लिए कुछ विशेष बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक होता है। ये समझदारी के घटक ही है :

स्वतन्त्र रूप से ज़िम्मेदारी महसूस करना - यह पहला और महत्वपूर्ण घटक है जिसका अनुभव और निर्वाह अनिवार्य रूप से वांछनीय होता है। यहां स्वतंत्रता से हमारा तात्पर्य है– किसी दूसरे पर निर्भर न रहते हुए अपने पर विश्वास करना और अपनी समझ-बूझ से काम लेना। कई बार ऐसा देखा जाता है कि परिवार की लड़कियां अपनी माताओं पर बहुत निर्भर रहने लगती हैं, यहां तक कि विवाह हो जाने के बाद भी वे अपनी मां की सलाह से गृहस्थी चलाती हैं। कोई समस्या पैदा हो जाने पर उसका हल खोजने मां के पास दौड़ती हैं, पति के साथ झगड़ा होने पर अपनी मां से शिकायत करती हैं। स्पष्ट है कि उनका वैवाहिक जीवन सफल नहीं हो पाता। कइयों को सम्बन्धविच्छेद करना पड़ जाता है; और दूसरी कुछ आजीवन परेशान रहती हैं। इतना ही नहीं कि इस आचरण से सिर्फ उनका जीवन ही प्रभावित होता हो, वरन् उनके साथ उनका पति और उनकी माता भी भावनाजन्य परेशानियों और रुग्णता के शिकार हो जाते हैं। अतएव व्यक्ति को स्वयं पर निर्भर करना चाहिए, स्वतंत्र रूप से अपने अन्दर सूझबूझ और आत्मविश्वास पैदा करना चाहिए।

इसी तरह जो व्यक्ति अपने निज के कार्यों के लिए मित्रों,परिचितों या रिश्तेदारों पर एकान्त रूप से निर्भर करते हैं, प्रायः उनकी भी यही दशा होती है। यहां इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि व्यक्ति अपनी मदद स्वयं करता हैं, वह खुद अपना सबसे बड़ा सहायक बन सकता है।

मेरे पास पाठकों के प्रतिदिन ही ऐसे पत्र आते रहते हैं जिनमें वे लिखतें हैं–"आप मुझे जीवन-दान दे दीजिए", "बस इस मुसीबत से आप ही मुझे बचा सकते हैं", "यदि मेरी समस्या हल नही हुई तो मैं आत्महत्या कर लूंगा।" स्पष्ट है कि ऐसे रोगी भावनात्मक रुग्णता के शिकार होते हैं। मैं उन्हें अपने ऊपर और सिर्फ अपने ऊपर निर्भर करने के लिए प्रोत्साहित करता हूं। इस तरह निर्भरात्मक रूप से जब कोई

व्यक्ति दूसरों की तरफ ताकता है तो वह अपनी शक्ति, अपने गुणों और अपनी क्षमता को भूल जाता है अथवा उसका मूल्यांकन बहुत घटाकर करता है। और यह एक नासमझी का, बचपने का भाव होता है। जैसे बच्चा दूसरों पर निर्भर रहता है।

इस तरह दूसरों पर निर्भर करने की प्रवृत्ति वाले व्यक्ति जब प्रत्याशित सहायता नहीं पाते अथवा उनके ये सहारे हट जाते हैं, तो फिर वे शराब का सहारा लेने लगते हैं।

वस्तुतः असली अर्थों में व्यक्ति अपने ऊपर निर्भर रहकर ही समाज तथा स्वजनों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा सकता है। अर्थात् जिम्मेदारी को स्वतन्त्र रूप से समझना और निर्वाह करना चाहिए।

'समझदारी' देने की प्रवृत्ति में है न कि लेने की –बालकों में एक खास प्रवृत्ति लेने की होती है–अपनी वांछित वस्तुएं प्राप्त करना। यदि उनसे कोई उनका खिलौना लेना चाहे तो वे किसी सूरत में उसे देने को तैयार नहीं होते। बहुत कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति अनेक वयस्क व्यक्तियों में पाई जाती है। वे कोई भी काम करने के पहले यह सोचते हैं कि –'हमें इससे क्या मिलेगा ? निश्चय ही बनियेपन की यह प्रवृत्ति कोई अच्छी प्रवृत्ति नहीं होती। जो लोग इसी रूप से सोच-विचार के आदी हो जाते हैं, वे दुखी रहने लगते हैं, क्योंकि वे अब बच्चे तो रह नहीं गए जो लोग उन्हें खिलौने और मिठाइयां दिए जाएं। अब वे वयस्क हैं। उन्हें देना सीखना चाहिए। जब वे देना सीख जाएंगे तो उन्हें स्वयं ही प्राप्ति होने लगेगी। उद्देश्य 'प्राप्ति' नही 'दान' होना चाहिए। यदि व्यक्ति निस्वार्थ भाव से देने की प्रवृत्ति अपना लेता है तो फिर उसे स्वयं में एक सन्तोष और सुख मिलता है। सुख और सन्तोष मन में सुखकारी भावनाएं पैदा करते हैं।

अहंकेन्द्रिता समझदारी की शत्रु होती है–अहंकेन्द्रिता के कई अर्थ और रूप होते हैं और यह भाव भी बालकों में ही अधिक पाया जाता है। प्रायः बच्चे एक-दूसरे से कहते पाएं जाते हैं–"हमारे पास गेंद-बल्ला है तुम्हारे पास नहीं है", "मैं बहुत ऊंचाई से कूद सकता हूं तुम नहीं कूद सकते" अथवा "मेरे पिताजी तुम्हारे बाप से ज़्यादा ताकतवर हैं। अगर वह एक थप्पड़ मार दें तो तुम्हारे पिता चार मुड़कैय्ये खाएंगें।" ऐसे बहुत व्यक्ति मिलते हैं जो इस तरह की बचपने की प्रवृत्तियों से अपने को मुक्त नहीं कर पाते। स्पष्ट है कि ऐसी प्रवृत्तियों से व्यक्ति का घमण्ड टपकता हैं। घमण्डी व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य का गलत अनुमान होता है। बहुत बार लोग इस ढंग के विचार प्रकट करतें देखे जाते हैं–"वह तो मैं ही था जो इस झटके को झेल गया, वर्ना कोई दूसरा होता तो मर जाता।" यह बात लोग कभी बीमारी के बारे में कहते हैं, कभी मुकद्दमें के बारे कहते हैं, कभी व्यापार-सम्बन्धी आर्थिक हानि के सम्बन्ध

में उल्लेख करते है। वे कदाचित् यह नहीं जानते अथवा अपने बचपने के कारण जानकर भी नहीं मानते कि उनसे भी अधिक सामर्थ्य, सूझबूझ और शक्तिशाली लोग संसार में भरे पड़े हैं। ऐसे अहंकेन्द्रित लोगों की जीवन में किसी से पटरी नहीं बैठती, क्योंकि वे नम्रता और सहयोग की भावनाओं से रीते होते हैं। ऐसे लोग जब किसी के साथ साझा करते हैं तो अप्रिय और झक्की साझी साबित होते है। सभा-सोसायटियों में ऐसे लोग उत्तेजित हो जाते हैं कभी ये दो आदमियों के बीच झगड़े कराते पाए जाते हैं।

वस्तुतः संसार एक प्रतियोगिता-क्षेत्र है। प्रतियोगिता एक अच्छी बात है, किन्तु उपर्युक्त प्रकार के लोग प्रतियोगिता-भावना छोड़कर प्रतिद्वंद्विता पर आ जाते हैं और तब वे स्वयं तो दुःखोत्पादक भावनाओं से पीड़ित रहते ही हैं। दूसरे को भी भावनाजन्यरुग्णता का शिकार बना देते हैं।

यौन (सेक्स) सम्बन्धों में परिपक्वता –जीवन में सेक्स का क्षेत्र ऐसा है कि इससे अधिक नासमझी और बचपने के आचरण व्यक्ति कदाचित् जीवन के दूसरे क्षेत्रों में नहीं करता। और इसका कारण भी वही है–शुरू से कोई संगठित अथवा वैज्ञानिक शिक्षा न मिलना। सेक्स की उपयोगिता और आनन्दानुभूति स्त्री और पुरूष के मिलन में होता है। सहयोग, सहानुभूति और पारस्परिक प्यार द्वारा ही इस मिलन में परिपक्वता आती है। किन्तु बिरले ही व्यक्ति इस क्षेत्र में समझदारी के आचरण करते पाए जाते हैं। वस्तुतः इस क्षेत्र में परिपक्वता प्राप्त कर लेने वाले आदमी को सौभाग्यशाली ही माना जाएगा। अन्यथा अधिकांश व्यक्ति केवल इन्द्रियलोलुपता को ही सब कुछ मान बैठते हैं।

किसी शिक्षा के अभाव में उनके अन्दर भय, भ्रमधारणाएं तथा तरह-तरह की मानसिक बाधाएं घर कर लेती हैं। हमारी शिक्षा संस्थाएं परिवार, मित्रों का क्षेत्र एवं धार्मिक प्रवचन और शिक्षाएं–कोई भी इस दिशा में व्यक्ति को वैज्ञानिक ज्ञान नहीं देती ताकि वह इस विषय को जीवनोपयोगी बना सके। फलतः उसे दूषित ज्ञान प्राप्त करने के अवसर ही अधिक मिलते हैं। और यह दूषित ज्ञान उसकी ज़िन्दगी में ही बदबू भर देता है।

आक्रमणात्मक प्रवृत्ति से ऊंचे उठिए

बहुत बार ऐसा समझ बैठते है कि क्रोध, घृणा, कठोरता और लडाई-झगड़ा करना, ये सब शक्ति के प्रतीक हैं। लेकिन असलियत इसके बिल्कुल विपरीत होती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे 'बचपना' कहा है, क्योंकि एक बच्चा परिवार के जिस

वातावरण में रहता है, वहां उसके गुरुजन भी होते हैं, उनकी तुलना में वह बालक अपने को कमजोर, पराधीन और अरक्षित समझता है। परिवार में जब उसे अनुशासित रखा जाता है तो उसकी अनेक इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। इसलिए वह कभी गुस्सा करता है, दूसरों से घृणा करता है, लड़ाई करता है और कठोर हो जाता है। ये आचरण निश्चय ही दुर्बलता और मजबूरी के प्रतीक होते हैं। बहुत-से वयस्क लोग बचपन के इन आचरणों को नही छोड़ पाते हैं। क्योंकि वे बड़े होकर भी अपने को कमजोर, पराश्रित और अरक्षित समझते हैं। वे इसलिए कमज़ोर होते हैं कि उन्होंने शक्तिशाली बनना नही सीखा होता । नम्रता और दृढ़ता दरअसल शक्तिशाली व्यक्ति के अन्दर ही होती है। ऐसे व्यक्ति जब किसी पद पर पहुंच जाते हैं, तो बदनाम अफसर होते हैं। कई बार ऐसे लोग ही गिरोह बनाकर डाकू और लुटेरे हो जाते हैं।

इसी तरह के बचपने और नासमझी के काम अनेक प्रकार के हो सकते हैं। कौन व्यक्ति किस क्षेत्र में नासमझी करता है, यह कहना प्रायः कठिन होता है।

व्यापक रूप से फैली नासमझी –आज यदि कोई मनोवैज्ञानिक नासमझी की बातों और आचरणों का सर्वेक्षण करने निकले तो उसे नासमझी के इतने उदाहरण मिलेंगे कि वह उन्हें लिखता-लिखता थक जाएगा, क्योंकि नासमझी का यह रोग प्रत्येक क्षेत्र में फैल चुका है। कुछ उदाहरण देखिए।

बसों के यात्री लाइन में खड़े न होकर बीच में घुसकर पहले अपना नम्बर लेना चाहते हैं और रोकने-टोकने पर लड़ते-झगड़ते हैं। गलत काम करके भी लज्जित नहीं होते।

बस कण्डक्टर बस में स्थान होने पर भी मार्ग के अड्डों पर बस नहीं रोकते। कहने-सुनने पर यात्रियों से लड़ते हैं और कानून की दुहाई देते हैं।

रेलों और बसों में लोग बिना टिकट सफर करते हैं। साधुसंन्यासी तो कई बार बिना किराये सफर करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। इस अनियमितता को रोकने के लिए बस अधिकारियों और रेलवे बोर्ड को अतिरिक्त स्टाफ रखना पड़ा, जिससे राष्ट्रीय धन की हानि तो हुई ही, उस स्टाफ के सामने उन लोगों को मुफ्त में लज्जित भी होना पड़ता है। ब्लैकमेलिंग, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी तथा दूसरे सभी तरह के भ्रष्टाचारों का आज बोलबाला है–जिससे समाज और व्यक्ति की अपरिमित हानि हो रही है।

एक स्वार्थी राजनैतिक नेता हर बार के चुनाव में जनता से नये-नये झूठे वायदे करता है और भोली, ईमानदार किन्तु नासमझ जनता उसके भुलावे में आकर बार-बार उसे अपने वोट दे देती है।

कम्युनिस्टों ने यह प्रचार किया कि उनका विधान किसान और मज़दूरों की

खुशहाली के लिए स्वर्गीय विधान के समान है। और अनेक भोले लोगों ने इस घोषण को ज्यों का त्यों सही मान लिया। और अब वह बेकार साबित हो रही है।

धर्मध्वजियों ने यह ऐलान करना शुरू किया कि उन्हें इल्हाम होते हैं, ईश्वर उनके पास सन्देश भेजता है कि लोगों में धर्म का प्रचार करो। धर्म के विरूद्ध होने से दुनिया पाप-पंक में फंसी है और नाना प्रकार के कष्ट भोग रही है। किन्तु रात-दिन ही ऐसे धर्म-गुरुओं के पाखण्डों का भण्डाफोड़ होता रहता है, लेकिन फिर भी लोग उनकी शरण में जाते हैं, उन्हें मालपुए खिलाते हैं और उनकी बातों को देववाणी मानते हैं।

किरायेदार मकान मालिक को दस रूपये मात्र पुरानी दर का किराया देकर मकान मालिक बना रहना चाहता है। और मकानदार को तंग करके निकालना चाहता है ताकि वह ऊंची पगड़ी लेकर दूसरे को मकान दे सके।

विद्यार्थी जानते हैं कि बिना परिश्रम के पास नहीं हो सकेंगे, फिर भी परिश्रम नहीं करते। नकल करने के आधार पर पास होना चाहते हैं। रोकने पर अध्यापकों को छुरा दिखा देते हैं। किन्तु फिर भी उत्तीर्ण नहीं हो पाते सालों-साल एक कक्षा में पड़े रहकर अमूल्य समय नष्ट कर देते हैं।

निहित स्वार्थ के व्यक्ति मज़दूरपेशा लोगों को भड़काकर मिलों और कारखानों में हड़ताल करा देते हैं। हड़ताल के दौरान उनके बच्चे भूखे मरते हैं। लेकिन अगली बार फिर उन्ही नेताओं की अपील पर वे ही मज़दूर हड़ताल कर बैठते हैं।

अपरिपक्वता और नासमझी के ये थोड़े से उदाहरण है। जो रोजमर्रा के जीवन में हमारे सामने आते रहते हैं। इस तरह के और असंख्य उदाहरण देखें जा सकतें है। वस्तुतः परिणाम सोचे बिना काम कर डालना लोगों से झूठ और धोखे का व्यवहार करना, दूसरे व्यक्तियों को तंग करना और परेशानी में डालना, ये सभी नासमझी और बचपने के आचरण होते हैं।

परिपक्वता का लक्षण–अनुकूलन

अनुकूलन से तात्पर्य है समय और परिस्थितियों के अनुसार अपने को मोड़ लेना। यदि आप पचास की आयु पार करके साठ के आसपास पहुंच रहे है। तो चालीस वर्ष पहले जो समाज आपने देखा था, आज का समाज उससे बहुत भिन्न हैं, अब आप अपने को वर्तमान युग में 'फिट' कर पाते हैं या नहीं! यह विचारणीय है।

आपकी जवानी के समय में संभ्रान्त घरानों में बहू-बेटियां घरों में रूज़, लिपस्टिक, पाउडर और क्रीम इस्तेमाल नही करती थीं; इन वस्तुओं का इस्तेमाल छिछोरापन समझा जाता था। किन्तु आज के सामाजिक वातावरण में ये वस्तुएं इतनी प्रचलित हैं, कि

एक पारिवारिक आवश्यकता बन गई है। आज आपकी पुत्रियां और पुत्रवधुएं पूरा मेकअप करके निकलती हैं। मेकअप न करना आज पिछड़ेपन की निशानी माना जाता है। आप देखिए कि इस परिवर्तन की ओर आपका कैसा रूख है ? अगर अपने जमाने के हिसाब से आज भी आप इन बातों को हेय समझते हैं, तो काम नही चलेगा; क्योंकि ऐसा समझने पर आप अपने बच्चों से इस बात का आग्रह करेंगे, कि इन वस्तुओं का इस्तेमाल न करें। लेकिन जमाने के अनुसार उनके संस्कार आपसे भिन्न हैं, वे आपकी दलीलें और आग्रह नहीं मानेंगे, तब आपके और उनके मध्य एक विचार-संघर्ष छिड़ जाएगा। फल होगा दोनों पक्षों के मध्य वैचारिक तनाव। निश्चय ही ऐसा दुराग्रह रखना परिपक्वता का सूचक नहीं है। समझदारी इसी बात में है कि आप इस परिवर्तन को स्वीकार करें।

इसी तरह की और भी बातें हो सकती हैं, जैसे लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा, नृत्य, संगीत, सिनेमा, होटल, रेस्तरां आदि में खान-पान आदि। इनका मूल्यांकन आज के सिक्कों में कीजिए, पुराने पैंसे में नहीं।

उत्तरप्रदेश में जमींदारी की प्रथा समाप्त हुई तो वहां के जमींदार और ताल्लुकेदार तिलमिला उठे। भारतीय नरेशों की रियासतें जब नहीं रही तो उनका भी यही हाल हुआ। पुराने जमाने में राजा-रईसों को बहुत आमदनी होती थी, और कामकाज कोई खास नही करना पड़ता था। अलबत्ता प्रजा और किसानों पर शासन करने का सुख प्राप्त था। ज़माना बदला। आमदनी के पुराने ज़रियें बन्द हो गएं परिश्रम करके रोजी-रोटी कमाने की स्थिति सामने आई किन्तु इस बदली हुई स्थिति में कितने व्यक्ति अपने को बिठा पाए ? शायद बहुत कम ! अधिकांश राजा और ताल्लुकेदार पुरानी रईसी परम्परओं से चिपटे रहें, उन्हें छोड़ना या बदलना उन्हें शानोशौकत के खिलाफ लगा, मिथ्या अभिमान दिल में घुसकर बैठा रहा। फल वही हुआ जो होना था, खर्चों रईसी, आमदनी फकीरी, जो कुछ जमा पूंजी बची थी वह भी समाप्त हो गई। कोई घर से निकल गया, किसी ने आत्महत्या कर ली, कोई स्थायी रोगों का शिकार होकर ज़िन्दगी को घसीटने लगा। इन सभी लोगों को कांग्रेस सरकार को गालियां देने और ज़माने को कोसने के अतिरिक्त और कोई काम न था। सभी भावनाक्षोभ के शिकार बन गए।

एक ऐसे ही दिवालिया जमींदार महोदय, सब कुछ छिन जाने पर भी छोटे से छोटे मर्ज के इलाज के लिए सिविल सर्जन को बुलाया करते थे। सिर्फ इसलिए कि उनके यहां पहले से ही सिविल सर्जन से नीचे पद के डाक्टर से इलाज कराना शान के खिलाफ समझा जाता था। सिविल सर्जन की ऊंची फीस और महंगी दवाइयां उन्हें कर्ज लेकर या घर का सामान बेचकर मंगानी पड़ती थीं, लेकिन यह सब उन्हें मंजूर

था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में और समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों के समक्ष बदली हुई परिस्थितियां आती रहती हैं। जो व्यक्ति स्वयं को पस्थितियों के अनुसार नहीं ढाल सकता, हवा के रुख को पहचानकर नही चल सकता, पुरानी रूढ़ियों को छोड़ नई वैज्ञानिक मान्यताओं में आस्था नही ला सकता, वह शायद संसार में कभी सुख नहीं पाता; क्योंकि संसार एक ऐसा परिवर्तनशील सपना है जहां मान्यताओं, धारणाओं और सिद्धान्तों के मूल्य हमेशा बदलते रहते हैं। ज़माने के साथ खुद को भी बदलकर चलना ही होशियारी और समझदारी होती है। ऐसा न करने वाले लोग पिछड़ जाते हैं।

मगर, जिन लोगों के पास मोड़ ले लेने की और अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने की क्षमता होती है, वे वास्तव में परिपक्व बुद्धि के व्यक्ति होते है। संसार में रहते हुए प्रत्येक मनुष्य पर विपत्तियां आती हैं, और कई बार ऐसी विपत्तियां आती हैं, कि पैरों के नीचे की ज़मीन खिसकने लगती है। ऐसे अवसरों पर वही व्यक्ति डट सकता है जो बिना टूटे अपने ऊपर से विपत्तिकाल गुज़ार दे।

वास्तव में नासमझी और अपरिपक्व बुद्धि के काम सिर्फ उस व्यक्ति विशेष या समाज के लिए ही हानिकारक नहीं होते, वरन् कई बार राष्ट्र और समूचे संसार के लिए घातक सिद्ध होते हैं। ईसा, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी और अमेरिका के कैनेडी बन्धुओं की हत्या नासमझी की चरम सीमा के उदाहरण हैं, जिनसे भारी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हानि हुई है।

नासमझी के ऐसे काम लोग जब तक करते रहेंगे तब तक शायद संसार में सुख और शान्ति नहीं आएगी। दरअसल ये बचपने के कार्य कितने महगें पड़ते हैं इसका अनुमान इन्हें करने वाले व्यक्ति सम्भवतः कभी नहीं लगा पाते। और यह भी एक विडम्बना है कि इन कामों को करने वाले लोग ये मानने को तैयार नहीं होते कि वे गलत काम कर रहे हैं।

दुःखों का काल्पनिक संसार

कुछ लोग इस तरह के काल्पनिक संसार में रहते हैं कि उन्हें दुनिया में सभी कुछ अपने विपरीत दिखाई देता हैं। दरअसल ऐसे लोग कल्पना और यथार्थ का अन्तर ही नहीं समझ पाते। उनकी यह धारण बन जाती है कि संसार में उनके लिए दुःख ही दुःख है। अर्थात् वे हमेशा दुःखों के काल्पनिक संसार में विचरण करते रहते हैं। सम्भवतः पाठकों ने ऐसे लोगों की बातें सुनी होंगी जो कहते रहते हैं–साहब ! आजकल आदमी जिए तो कैसे जिए, महंगाई आसमान को छू रही हैं–गेहूं चार रुपये किलो

से भी ऊंचा बिक रहा है, चीनी दस रूपये है, दस रूपये गज से कम सूती कपड़ा नहीं मिलता। कोई क्या खाए क्या पहने! अदालतें झूठ और बेईमानी का अड्डा बन गई हैं कोई सरकारी अफ़सर बिना पैसे लिए बात नहीं करता। रिक्शे और स्कूटर वालों ने लूट मचा रखी है, हर चीज़ पर ब्लैक हो रहा है बस, इन्सान, इंसान का गला काटने पर तुला है। और इस तरह शिकायत करने वाला वह व्यक्ति, रोज अच्छा खाना भी खाता है, साफ कपड़े भी पहनता है, बेईमान अदालतों में मुकदमें लड़ने भी जाता है, ब्लैकमार्केट से अपनी पसन्द का सामान भी खरीदता है; जिन बातों को रोता-झींकता है उन्हें ही करता है, लेकिन वह कोई सही कदम नही उठाता।

वास्तव में ऐसे लोगों की निगाह में तस्वीर का सिर्फ एक ही पहलू रहता है–उन्हें यह पता नही कि दूसरे मुल्कों में अपने यहां से भी कई गुना अधिक महंगाई है। कई देशों में एक वक्त की साधारण खुराक भोजनालयों में सैकड़ों रुपये तक बैठती है, वहां बाज़ार में जूता पालिश कराने के पांच रूपये लगतें हैं। बाज़ार में सूती कमीज दो-तीन सौ रूपये की मिलती है, टैक्सी में सिर्फ एक फर्लांग चलने का किराया बीस-तीस रूपये देना पड़ता है।

तो इस तरह कल्पनालोक में विचरण करने वाले व्यक्ति अपने चारों ओर अनेक प्रकार के अतर्कित और कल्पित दुःख देखते रहते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि ऐसे दुःखों की दुनियां सिवाय उन लागों की कल्पना के और कहीं नहीं होती। वास्तव में हम लोग जिस संसार में रहते हैं, वह बड़ा रंगीन, सुन्दर और दिलचस्प है; जहां हम काफी आनन्द का उपभोग कर सकते हैं, बशर्ते कि हमारी रुचि रंगीनी की तरफ हो, हमारे अन्दर सौन्दर्य-बोध हो और दिलचस्पी लेना जानते हों परन्तु जब दृष्टीकोण में अपरिपक्वता और बचपना होता है तो चीजें उल्टी दिखाई देती हैं, और तब दुनिया दुःखों की गठरी से अधिक कुछ नहीं महसूस होती।

मनोवैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक समय ऐसा अवश्य आएगा कि लोग समझदारी और परिपक्वता के महत्व को समझने लगेंगे और तब शायद शुरू से ही व्यक्ति को उसकी शिक्षा भी मिलने लगेगी। तब निश्चय ही एक ऐसा समाज बनेगा, जहां लोग भावनाओं के धनी होंगे। कदाचित् उस समय संसार में शोक रोग भय नहीं रहेंगे। और मनुष्य युद्धों की विभीषिका से भी बच जाएगा, क्योंकि विश्वव्यापी युद्ध भी अपरिपक्व विचारों और गलत निर्णयों का परिणाम होते हैं।

8. विचार-प्रौढ़ता कैसे प्राप्त करें

संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा जो नासमझी और अपरिपक्व विचारों का शिकार न हो। क्या मैं, क्या आप, सभी इनसे प्रभावित हैं और इसीलिए भावना-क्षोभ से पीड़ित हैं। यह बात दूसरी है कि कोई नासमझी के काम कम करता है, दूसरा कुछ अधिक, बहरहाल अछूता कोई नहीं है।

लेकिन इस बात से तनिक भी निराश होने की जरूरत नहीं है। भावना-क्षुब्ध होने के लिए हमें अपने को अपराधी भी नहीं मानना चाहिए। हम और आप किसी अवगुण का शिकार हो गए हैं ऐसा समझकर अपने अन्दर हीन भावना को नहीं पनपने देना चाहिए। क्योंकि इस बात के लिए मैं या आप किसी भी दृष्टि से दोषी नहीं हैं। वस्तुतः हम सभी लोग परिस्थितियों से बाध्य हैं। हमें विचार-प्रौढ़ता, समझदारी अथवा परिपक्वता की कोई शिक्षा ही नहीं मिली। इसलिए हम भावना-क्षोभ को हटाना या जीतना नहीं सीख सकते।

वस्तुतः इस सन्दर्भ में शिक्षण के महत्व को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। किसी भी विषय का शिक्षण ही तो व्यक्ति को उस हुनर में पारंगत बनाता है। एक चमार या बढ़ई, एक डाक्टर या इन्जीनियर, एक क्लर्क अथवा शासक इसी आधार पर अपने पेशे के कामों को सही अंजाम दे पाता है कि उसे छुटपन से इन कामों का प्रशिक्षण मिला होता है। एक बढ़ई एक डाक्टर का काम नहीं कर सकता क्योंकि वह उस विषय में शिक्षित नहीं होता। फलतः जिस विषय में व्यक्ति को शिक्षा नहीं मिलती उस विषय में वह अधकचरा या अनभिज्ञ रहता है। भावना-नियन्त्रण क्षेत्र में भी लगभग यही बात है। सभी लोग इसमें अधकचरे या अनभिज्ञ हैं। अब तक परिस्थितियां ही ऐसी रही हैं। जिनमें इस शिक्षा का कोई स्थान नहीं बनाया जा सकता, अतः कोई दोषी नहीं है।

इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि धर्मप्रवर्तकों और अध्यात्म मनीषियों ने इस ओर सांकेतिक मार्गदर्शन किया। काम; क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, से बचने

का सन्देश दिया। लेकिन धीरे-धीरे धर्म और अध्यात्म स्वार्थी लोगों के चंगुल में पड़ गया और उन्होंने उसे दुकानदारी बना डाला। स्वर्ग, नरक, पूर्वजनम कर्म और भक्ति के नाम पर जनसाधारण को ठगा जाने लगा। अन्धविश्वास और अज्ञान ने इस क्षेत्र में अपनी जड़ जमा ली। फल यह हुआ कि विचारक मनीषियों ने जो एक मौलिक और वैज्ञानिक योजना बनाई थी वह सबकी सब खटाई में पड़ गई। धर्म के क्षेत्र में अनैतिकता और धोखेबाज़ी का ताण्डव होने लगा, और अब धर्म से लोगों का विश्वास हटने लगा।

परिपक्वता : एक महान अनुभव

यदि आपको यह पता चले कि अमुक स्थान पर हीरे बिखरे पड़े हैं और उन्हें उठा लाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, तो आप दौड़कर उस स्थान पर जाएंगे और हीरों से अपनी झोली भर लाएंगे। और तब आपकी आंखों में प्रसन्नता की चमक होगी, हृदय में उत्साह होगा और एक दुर्लभ सम्पत्ति का स्वामी हो जाने का गर्व भी होगा।

मनोविज्ञान ने भी आपके सामने परिपक्वता के रूप में ऐसे हीरे बिखरा दिए हैं जिन्हें बटोरकर आप जीवन के सच्चे धनी बन सकते है। वस्तुतः इन हीरों को पाकर ज़िन्दगी में आपको रोग, भोग नहीं सताएंगे, जीवन की कड़वाहट मिठास में बदल जाएगी, ज़िन्दगी का भोंड़ापन हटकर जीवन सुन्दर और दिलचस्प लगेगा। और निश्चय ही ऐसा जीवन एक शानदार और महान अनुभव होगा (!)

आनन्दमय जीवन बिताने का मन्त्र मालूम हो जाना वास्तव में एक बड़ी उपलब्धि है। इस मन्त्र को सीख लेने में किसी को देर नहीं करनी चाहिए। आप आज से और अभी से इस महामन्त्र की गहराई में पैठना शुरू कर दीजिएगा।

मन्त्र सीखने का गुर

थोड़ी देर के लिए कल्पना कीजिए कि भावनाओं और परिपक्वता के क्षेत्र में 'रमेश ने सही शिक्षण हासिल किया है और इस सही ट्रेनिंग ने रमेश को रोज़मर्रा की घटनाओं समस्याओं परिस्थितियों और बातों पर सोच-विचार करने और उनसे निपटने के लिए कुछ खास तौर-तरीकों का अभ्यस्त बना दिया है, अर्थात् उसके पास इन सबके लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। एक मनोवैज्ञानिक रुख है।

'सुरेश' एक दूसरा व्यक्ति है जिसे भावनाओं और परिपक्वता से सम्बन्धित कोई

शिक्षण नहीं मिला है। रोज़मर्रा की बातों और समस्याओं से सुरेश जिन तौर-तरीकों से निपटता है, जो विचार और रुख वह इनके प्रति रखता है, उससे सुरेश के अन्दर भय, साहसहीनता, परेशानी, किंकर्तव्यविमूढ़ता तथा इसी तरह की दूसरी दुखकारी भावनाएं उत्पन्न होती हैं।

स्पष्ट है कि रमेश और सुरेश में इस अन्तर का कारण शिक्षण है। किन्तु शिक्षण ने क्या प्रतिक्रिया की, यह बात समझने की है।

वस्तुतः शिक्षण का प्रभाव रमेश पर यह हुआ कि सही रुख और सही सोच-विचार अख्तियार करने के लिए उसे अपने दिमाग पर कोई ज़ोर नहीं डालना पड़ा, गलत रुख को हटाकर सही रुख लाने का यत्न करना पड़ा, वरन् सम्भवतः और अनायास ही सही रुख उसके सामने आ जाता है। ट्रेनिंग ने उसे सही दिशा में सोच-विचार की स्वाभाविक क्षमता प्रदान कर दी थी।

और इस स्वाभाविक क्षमता को अपने अन्दर पैदा कर लेना ही इस मन्त्र का 'गुर' है। रमेश को यह वरदान शिक्षा ने दिया। परन्तु यदि हम और आप यह जान लेते हैं कि रमेश के सोच-विचार का तरीका क्या है (!) तो हम बिना शिक्षण पाए ही अभ्यास द्वारा उसे प्राप्त कर सकते हैं। अवश्य ही इस अभ्यास में हमें यह यत्न करना होगा कि जब गलत ढंग के विचार मन में आएं तो यत्नपूर्व उन्हें रोकें और उनके स्थान पर सही रुख अख्तियार करें। यह अभ्यास अवश्य ही हमें भी उस दर्जे पर पहुंचा देगा, कि सही सोच-विचार की स्वाभाविक क्षमता और दृष्टि प्राप्त हो जाएगी। इस यत्न को हम 'इच्छापूर्वक नियन्त्रण' कह सकते हैं।

इच्छापूर्वक नियन्त्रण

नियन्त्रण की इस प्रक्रिया को हमने ऊपर स्पष्ट रूप से समझाया है, लेकिन बात और खुलासा और आसान हो जाए, इस दृष्टि से इसे एक और तरीके से समझिए।

कल्पना कीजिए कि आपकी बुद्धि बल्कि बुद्धि की जगह 'विवेक' कहना ज़्यादा सही होगा क्योंकि 'विवेक' द्वारा ही अच्छे बुरे की पहचान होती है, तो आपका 'विवेक' एक छाया के रूप में आपके शरीर से निकलकर आपके शरीर के पीछे खड़ा है। वहां खड़ा हुआ वह आपके मस्तिष्क में होनी वाली सारी क्रियाओं को साफ तौर पर देख रहा है। दरअसल आपने 'विवेक' को वहां इसलिए खड़ा किया है कि जब भी आपका दिमाग क्षोभ पैदा करने वाले विचारों में उलझे तो वह आपको सचेत और सतर्क कर दे।

तो जब भी आपको 'विवेक' द्वारा यह सूचना मिले कि आपके दिमाग ने गलत ढंग के सोच-विचार की दिशा बदल दी है, आप अपने रुख में परिवर्तन लाइए;

इच्छापूर्वक यह सब कुछ करिए। और तब रमेश की तरह ही भावनाओं की लगाम आपके हाथ में आ जाएगी और आप परिपक्वता के धनी बनने लगेंगे।

'इच्छापूर्वक नियंत्रण' के इस गुर को जीवन में क्रियात्मक रूप से अपना लेना और उतार लेना, अभ्यास द्वारा बड़ा सरल है। प्रारम्भ में जब हमें अपने सोच-विचार को मोड़ देना पड़ेगा, उस समय यह एक कठिन क्रिया मालूम पड़ सकती है, क्योंकि हरेक तरह का नया अभ्यास 'यत्न ' और थोड़ी-बहुत साधना चाहता है; लेकिन यहां यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि अभ्यास हो जाने पर मनुष्य कठिन से कठिन क्रियाओं को सरल बना लेता है।

एक सामयिक उदाहरण– मेरे ज्येष्ठ पुत्र अशोक कुमार ने किस मुस्तैदी और विचारशीलता से 'इच्छापूर्वक नियंत्रण' के गुर को लागू किया, वह उदाहरण यहां उल्लेखनीय हैं।

अशोक कुमार को अपने रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में एम्प्लायमेंट एक्सचेंज के कार्यालय में किसी कर्मचारी से कुछ सूचनाएं लेनी थी। वह कर्मचारी अपनी मेज पर बैठा काम कर रहा था। अशोक ने नम्रतापूर्वक उस व्यक्ति के सम्मुख अपनी जिज्ञासा रक्खी, किन्तु इस बात पर वह कर्मचारी खीझ उठा और कहने लगा–"इन बेकार की बातों के लिए मेरे पास समय नहीं हैं, जाइए बारह बजे आना ......"
स्पष्ट है कि कर्मचारी का उत्तर बड़ा अशिष्ट था। सामान्य रूप से इस उत्तर की किसी भी व्यक्ति के मन पर अच्छी प्रतिक्रिया शुरू हो गई अर्थात् मन में क्रोध उभरने लगा। यहां दलील यह उठती थी कि वह सरकारी कर्मचारी जिस काम के लिए वहां बिठाया गया है उसे अंजाम न देकर जनता को परेशान कर रहा है और अशिष्ट व्यवहार से लोगों को क्षुब्ध करता है। इसलिए उसे एक फटकार बताई जाए और एक अच्छा सबक दिया जाए ताकि आगे से ऐसा न करे। और यह सब उस कर्मचारी से उलझकर ही किया जा सकता था। लेकिन उलझने से वांछित फल निकल जाएं यह जरूरी नहीं था। लेकिन यह बात स्पष्ट थी कि उलझने से कर्मचारी चिढ़ेगा दोनों में कहा-सुनी होगी, अशोक को और क्रोध आएगा, तू-तू, मैं-मैं होकर बात बहुत तूल पकड़ ले, इस बात की अधिक संभावना थी। और उसका नतीजा यह होगा कि अशोक जिस काम के लिए उस कार्यालय में गया था, वह तो गौण हो जाएगा, क्रोध के कारण मन में अशांति, खीझ और चिढ़न लेकर ही लौटेगा।

दूसरी ओर यह बात भी विचारणीय है कि वह कर्मचारी स्वभावतया अशिष्ट और कामचोर न हो। संभवतः काम की अधिकता या अफसर की डांट-फटकार ने उसे चिड़चिड़ा बना दिया हो। बहरहाल उस कर्मचारी से लड़ना-भिड़ना कोई समझदारी की बात नहीं थी।

अशोक कुमार ने इस नाजुक परिस्थिति पर समझदारी का कदम उठाया। गलत ढंग का सोच-विचार जो मस्तिष्क में शुरू हो गया था, उसे वहीं रोका, अपने रुख को सही मोड़ दिया और उस कर्मचारी से बिना कुछ कहे चला आया। कुछ देर बाद दूसरे कर्मचारियों से उसे अपने मतलब की जानकारी मिल गई, काम हो गया, अपरिपक्व आचरण से पैदा होने वाले मनस्ताप और हंगामे से बच गया। इच्छापूर्वक विचारों का नियंत्रण इस सारी घटना में घटित हुआ और बात एक खूबसूरत ढंग से निपट गई।

इस गुर पर अविलम्ब काम शुरू कर देना ही पपिक्वता सीखने की कुंजी है। बार-बार इस नारे को दोहराइए–"हम सही दिशा में सोच-विचार करेंगे।" दरअसल इस तरह दोहराने से आप इस गुरुमंत्र को जैसे तख्ती पर लिखकर अपने मन के भीतर टांग देंगे जिसपर प्रत्येक क्षण आपकी नजर पड़ती रहेगी, और फिर यह मंत्र पत्थर की लकीर की तरह आपके मन पर अंकित हो जाएगा कि "आपको सही दिशा में सोच-विचारकर आचरण करना है।"

अलबत्ता प्रारम्भ में आपको ऐसे अवसरों से पाला पड़ेगा कि परिस्थितिवश आपके विचारों की गाड़ी गलत दिशा में दौड़ने को उद्यत होगी। लेकिन तभी आप मन की तख्ती पर लिखे मंत्र को नजर उठाकर देखें और अपने को संयत कर लें।

और विचारों की दिशा का यह परिवर्तन जीवन के उस उद्यान में आपको ले जाएगा जहां स्थिरता, त्याग, सहनशीलता, दृढ़ता, खुशमिज़ाजी, उत्साह , प्रेम और आशावादिता के सुन्दर फूल महक रहे हैं। वहां निराशा, चिड़चिड़ापन, क्षोभ, भय, साहसहीनता और असफलात की भावनाओं के कांटे नहीं हैं।

वैकल्पिक विषय

यहां हमने जो विचार-प्रौढ़ता प्राप्त करने के गुर का उल्लेख किया है, उसे बुनियादी रूप से समझ लेने के बाद अर्थात् दुःखकारी भावनाओं के स्थान पर सुखकारी भावनाओं को लाने का रहस्य समझ लेने पर, कोई भी व्यक्ति चाहे तो अपने लिए कोई दूसरा उपाय काम में ला सकता है। वस्तुतः यह जरूरी नहीं कि सभी लोग एक ही उपाय अपनाकर लक्ष्य हासिल करें।

मेरा एक रोगी दुःखकारी भावनाओं के चंगुल से बचने के लिए रेडियो सुनने लगता था या अपनी पसंद के रिकार्ड ग्रामोफोन पर बजाकर वह अपने विचारों की दिशा आसानी से मोड़ लेता था। दूसरे एक सज्जन मुंह से सीटी बजाते और अपने मन में ऐसा वातावरण बना लेते कि आशा और उत्साह से भर जाते थे और अपने को दुर्भावनाओं के चंगुल में नही फंसने देते थे। एक तीसरे महाशय को जब परेशान

करने वाले विचार सताते तो वे घर से बाहर चले जाते थे, बाज़ार मे घूम-फिरकर वे एक परिवर्तन अनुभव करने लगते थे और अपने विचारों के परिवर्तन् में सफल हो जाते थे।

इसी तरह किसी भी दूसरे तरीके से आप भावना-नियंत्रण प्राप्त करने में स्वतंत्र है।

बहुत लोग प्रार्थना उपासना को विचार-परिवर्तन का एक अच्छा साधन मानते हैं। वे इस मार्ग का अवलम्बन करें। लेकिन प्रार्थना कभी भी हीन भावनात्मक नहीं होनी चाहिए। इस दिशा में सभी संप्रदाय के धर्मगुरुओं ने व्यक्ति के अन्दर एक हीनभावना को जन्म देने की कोशिश की है ताकि लोग धर्मगुरुओं का आधिपत्य स्वीकार किए रहें, उन्हें हलुआ-पूरी खिलाते रहें और उनकी मान-प्रतिष्ठा कायम रहे। इसीलिए उन्होंने ऐसे प्रवचन और नारे प्रचलित कर दिए हैं–जैसे, मनुष्य पापी है', 'अकिंचन है', 'कुमति है।

आजकल सामान्य लोगों में 'जै जगदीश हरे' वाली प्रार्थना बहुत प्रचलित है। इसके रिकार्ड भी बन गए हैं जो जगह-जगह लाउडस्पीकर लगाकर बजाए जाते हैं। किसी भी व्यक्ति के मन पर इसका अच्छा और उत्साहवर्द्धक प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि 'किस विधि मिलूं दयामय मैं तुमको कुमति', 'मैं मूरख, खल, कामी, कृपा करो भरता', 'विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा' आदि वाक्य भारी हीनभावना पैदा करते हैं। वस्तुतः किसी भी व्यक्ति को यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि मैं अकिंचन हूं, तुच्छ हूं, पापी हूं। इससे आत्मविश्वास घटता है और व्यक्ति अपनी नजरों में ही गिरने लगता है। स्वयं अपनी नजरों में गिरने वाला व्यक्ति कभी दुर्भावनाओं के जाल से मुक्त नहीं हो पाता।

अपने को समर्थ समझिए, आपके अन्दर साहस आएगा। संपन्न मानेंगे तो त्याग भी कर सकेंगे। अपने को सशक्त मानेंगे तो सहनशली बन सकेंगे।

यदि आप ईश्वर-विश्वासी हैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना कीजिए कि आप उसकी बनाई हुई चमत्कारपूर्ण दुनिया में, इस आमोदभरे संसार में सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकें। वह आपको दृढ़ता, साहस, प्रेम, सहनशीलता, त्याग, प्रसन्नता और धैर्य जैसे गुण प्रदान करे।

छोटी-छोटी बातें

यह देखने में आता है कि दुःखोत्पादक भावनाएं बहुत छोटी-छोटी बातों, घटनाओं और परिस्थितियों से पैदा हो जाती हैं। ऐसे मौकों पर हमारा निर्णय संतुलित और

प्रौढ़ होना चाहिए तो अनायास ही स्थिति काबू में आ जाती है। उदाहरण के t. पर आपके बच्चे की मुहल्ले के किसी दूसरे बच्चे से मारपीट हो रही है। आपक. पता चला और आप दौड़कर उस स्थल पर पहुंच जाते हैं। ऐसे मौकों पर स्थिति कुछ भी हो अर्थात् कुसूर आपके बच्चे का हो अथवा दूसरे का, लेकिन स्वाभाविक रूप से आप के मन में अपने बच्चे का ममत्व उमड़ता है और दूसरे बच्चे के प्रति आपमें क्रोध भड़कने लगता है। लेकिन क्रोधाक्रांत होने से पहले आपको निर्णय करना है कि इस मौके पर आपको कैसा व्यवहार करना है? अर्थात् विवेक से काम लेने पर आप इस निर्णय पर पहुंचेगें कि बच्चों की लड़ाई में यह पता लगाना बड़ा कठिन होता है कि दोष किसका है। दूसरे इस तथ्य को भी नज़रअन्दाज़ नहीं होने देंगे कि सुबह लड़ने वाले बच्चे शाम को फिर एक हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में विवेकपूर्ण निर्णय यही होना चाहिए कि दोनों को समझा-बुझाकर अलग कर दिया जाए। लेकिन यदि आप विवेक और दूरदर्शिता से काम नहीं लेते हैं तो हो सकता है कि दूसरे बच्चे को दो-चार चपत लगाएं और धमकाएं। और यह भी हो सकता है कि आप अपने बच्चे को कसूरवार मानकर अथवा क्रोध में भरकर पीटें, आपके ये दोनों ही कार्य अविवेकपूर्ण हों। दूसरे के बच्चे के साथ मारपीट करने से बातचीत बड़ों-बड़ों में पहुंचेगी और एक व्यर्थ का झगड़ा खड़ा होगा। ऐसे कार्यों के गम्भीर परिणाम प्रायः प्रकाश में आते रहते हैं। अपने बच्चे को दंड देने पर भी क्लेश, पश्चात्ताप जैसी दुर्भावनाएं आपको सताएंगी। किन्तु भावनाओं पर काबू पाकर सही निर्णय लेने से आप भावनाजन्य कष्ट के शिकार नहीं होगें।

छोटी-छोटी बातों का यह एक सामान्य उदाहरण है। ऐसी छोटी-छोटी बातें कितने मौकों पर और किस रूप में आती रहती हैं, इसका लेखा-जोखा लगना मुश्किल है।

इस तरह की छोटी-छोटी बातें जब मन को लगने लगती है तो व्यक्ति को स्थायी भावना-क्षोभ का शिकार बना लेती है। सर्वेक्षण से ये तथ्य प्रकाश में आए हैं कि भावना-क्षोभ से पीड़ित रोगियो में अस्सी फीसदी लोग इन छोटी और अपेक्षाकृत हल्की बातों के प्रभाव में आकर ही मानसिक क्षोभ के रोगी बन जाते हैं।

तो इन छोटी और हल्की (भावनाओं की पुष्टि से मैं इन्हें घटिया और सस्ती बातें कहूंगा) बातों से बचने के लिए भी यही मूल मंत्र और उसका गुर अपनाइए। अपने मन में टंगी उस तख्ती पर लिखे वाक्य को दुहराइए कि आप चिढ़न-कुढ़न जैसी दुर्भावनाओं को मन में प्रवेश नहीं पाने देगें ताकि भावना-क्षोभ के शिकार न हों और यत्नपूर्वक खुशमिज़ाज रहेंगे।

भावना-नियंत्रण एक शानदार उपलब्धि है। जिन्दगी जीने का एक शानदार तरीका है।

अपनी सफलता पर गर्व भी कीजिए

भावना-नियंत्रण की दिशा में आपके जितनी भी सफलता मिल जाती है, आप उसपर गर्व कीजिए। वस्तुतः आप जीवन की एक बड़ी उपलब्धि हासिल करने में अग्रसर हो रहे हैं। जीवन की बगिया को हरीभरी और पुष्प-पल्लवों से सजाने के लिए आपने उसमें रंगीन पौधे रोपने शुरू कर दिए हैं। सुगंधित फूलों की कलमें लगवा दी हैं। आप अपने को उत्साहित भी कीजिए इस स्वजनित उत्साह से आप अनायास ही बहुत आगे बढ़ने लगेंगे।

साथ ही अपनी इस असफलता का उपभोग भी कीजिए। भावना-नियंत्रण से जो एक आमोद और प्रसाद आपको मिला है, मानसिक रूप से जो हरियाली आपके अन्दर खिलने लगी है। उसका लुत्फ भी उठाइए, उसका स्वाद चखिए, उसका मज़ा लीजिए, फिर सारा जीवन आपका है और आप उसके मालिक हैं।

किन्तु यदि अड़चनें आती हैं

अड़चनें आना कोई असंभावित बात नहीं है। आप छोटी-छोटी परिस्थितियों पर तो काबू पा लेते हैं, दुर्भावनाओं के जाल से बच निकलते हैं; लेकिन जब कोई बड़ी मुसीबत दरपेश होती है, या व्यापार में भारी घाटा आ जाए या नौकरी छूट जाए (ये सब ऐसी बातें हैं, ऐसी स्थितियां हैं कि जो आती रहती हैं, इनसे सभी का पाला पड़ सकता हैं) तब अपने पर काबू करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। यहां मात्र भावनाओं के अदल-बदल से काम नहीं चल पाता। ऐसे मौकों पर विशेष विचारशीलता और क्रियात्मकता अपेक्षित होती है। तब इन चार बातों का गुर के रूप में अमल कीजिए :

1. उपर्युक्त परिस्थितियों से विचलित होकर अपने को दुर्भाग्यग्रस्त मत समझिए। ऐसे मौकों पर पिछली असफलताओं अथवा किसी पराजय या दुर्घटनाओं की याद करके लोग अपने को और दुर्भाग्यग्रस्त समझने लगते हैं। वे पुरानी घटनाओं पर भी निराशाजनक ढंग से सोचते हैं और सोच-विचार व्यक्ति को मानसिक रूप से डुबाने लगता हैं।

ऐसे मौकों पर सतर्क रहिए। किंकर्तव्यविमूढ़ता और चिड़चिड़ेपन को अपने पास मत फटकने दीजिए। सारांश यह कि अपनी नजरों में स्वयं को दयनीय मत बनाइए।

2. ऐसी विषम परिस्थितियों में प्रकट रूप में प्रसन्न रहने की चेष्टा कीजिए। मन में उठने वाले विचारों को, आंधी को यथासम्भव शान्त कीजिए और फिर मन

में खुशमिज़ाजी लाइए। मन के बोझ को इस खुशमिज़ाजी के गुर से हल्का कीजिए।

3. फिर आगे की बात सोचिए। आशान्वित रहिए और ऐसी योजनाएं बनाइए कि अपनी पराजयों को आप विजय के रूप में बदल सकें। सच तो यह है कि अपनी पहली विजय यही होगी कि यदि आप इन परिस्थितियों में, शान्त रहें, साहस न छोड़ें तथा खुशमिज़ाजी से अपने को हल्का बनाए रखें।

4. कल्पना कीजिए, सामने कुछ झंडियां गड़ी हैं और उनपर निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं :

"हमें शान्त और स्थिरचित्त रहना चाहिए।"

"किसी भी विषम परिस्थिति को शांति और गंभीरता से स्वीकार करना है।"

"निश्चय ही हम इस पराजय को सफलता में बदल सकते हैं और निश्चय ही बदलेंगे।

"परिस्थितियों की विषमता में फंसकर अपने को टूटने मत दीजिए। मुसीबत की गलियों में से झुककर और मुड़कर निकल जाइए। फिर आप साफ और प्रकाशमान सड़क पर पहुंच जाएंगें।"

"हम अपने जीवन से चाव नहीं निकलने देंगे। चाव ही जीवन की प्रेरणा है।"

इन झंडियों पर लिखे वाक्यों को बार-बार पढ़िए। ये वाक्य आपकी समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हैं। जीवन को सही दिशा देते हैं। जीने की कला सिखाते हैं, ज़िन्दगी के नक्शों को खूबसूरत रंगों से सजा देते हैं।

इस स्थल पर मैं मानव-स्वभाव की एक कमज़ोरी पर विशेष रूप से संकेत करना चाहूंगा। जब हमारे सामने कोई अड़चन, मुसीबत या परेशानी आती है तो हम उसे बड़ी अस्वाभाविक, अप्रत्याशित-सी बात समझने लगतें हैं। वस्तुतः ऐसा समझना भूल होती है और इस भूल से क्षोभ होता है। यथार्थ बात यह है कि जीवन का तानाबाना ही इस तरह का होता है कि उसमें अड़चनें, मुसीबतें , विषम परिस्थितियां और परेशानियां आती ही हैं। उनका आना स्वाभाविक है। अतः इन सब बातों को स्वाभाविक मानकर चलिए तो न आपको आश्चर्य होगा, न अवसाद। ये सभी प्रत्याशित हैं, अप्रत्याशित नहीं।

9. जीवन को धनी बनाइए !

मनुष्य-जीवन के बहुत-से पक्ष होतें हैं, अथवा यूं कहिए कि व्यक्ति का जीवन बहुत-से विभागों में बंटा हुआ है और इन विभागों में कई विभाग ऐसे हैं कि जिन्हें वह अच्छी तरह नहीं समझ पाता अर्थात् कुछ क्षेत्रों में वह अदबदाकर बचकाने काम करता हैं। फलस्वरूप वह भावना-क्षोभ का शिकार होकर काफी कष्ट पाता हैं। भावना-नियन्त्रण और परिपक्वता ऐसे व्यापक गुण है कि जिन्हें अपनाकर उन विभागों के प्रति भी संजीदा रुख अख्तियार किया जा सकता हैं।

यह एक अच्छा उपाय होगा कि हम ऐसे नियम और सिद्धान्तों पर अमल करें जो हमें उन क्षेत्रों में भी कच्चा व्यवहार करने से रोकें और हमारे रुख में परिपक्वता लाएं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बुनियादी बातों को आज़माइए।

जीवन में सादगी लाएं

सादा रहन-सहन और ऊंचे विचार (सिम्पल लिविंग एण्ड हाई थिंकिंग) रखना एक पुरानी कहावत है। वस्तुतः सादगी एक ऊंची चीज़ है। लेकिन कुछ लोग सादगी का अर्थ गरीबी लगा लेते हैं। यूं गरीबी भी बुरी नहीं होती। परन्तु सादगी का अर्थ गरीबी कभी नहीं होता सादगी में एक गरिमा और गम्भीरता होती है। सादगी की अपनी अलग ही शान है। सादगी की एक खास मंशा यह होती है कि व्यक्ति अपनी ज़रूरतों को न बढ़ाए। आडम्बर और ऐश्वर्य के पीछे आदमी आनन्द-उपभोग करने के लिए दौड़ता है, परन्तु इस दुनियां में हमारे चारों ओर ऐसी प्राकृतिक सम्पदाएं बिखरी पड़ी हैं जो प्रत्येक क्षण हमें प्रसन्नता और आनन्द दे सकती है। इन सम्पदाओं का उपभोग हम अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से हर वक्त कर सकते हैं। बशर्ते कि हम उस आनन्द-उपयोग की कला को जानते हो। वस्तुतः इन प्राप्य सम्पदाओं का उपभोग

न करके कुछ काल्पनिक सुखों के पीछे दौड़ना हमें स्वप्नदर्शी बना देता है और हम यथार्थ से दूर जा पड़ते हैं।

विषय को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए कुछ उदाहरण लीजिए :

मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय है, लेकिन इस सौन्दर्य-अनुभूति के लिए नन्दन कानन या राजमहलों की आवश्यकता नही है। प्रकृति ने मनुष्य के चारों ओर सौन्दर्य बखेर रखा है। आवश्यकता सौन्दर्य-बोध की है, उसे पहचानने की और उसमें रस लेने की है। घर के आंगन में खड़ा नीम का पेड़ और उसपर चढ़ी कोई जंगली लता क्या कम सुन्दर लगती है ? दूर-दूर तक बिखरी चांदी के समान चांदनी, निस्तब्ध तारोंभरी रात, ऊदी-ऊद घटाओं से भरा आकाश कितने सुन्दर होते हैं ! झर-झर करते झरनों, कलकल नाद से बहती नदियों प्रातःकालीन सूर्य की कोमल किरणों रंगबिरंगी चिड़ियों और ऐसी अगणित रचनाओं के रूप में प्रकृति ने इतना सौंदर्य हमारे समीप बखेर दिया है कि यदि हम इनमें रस लेना जानें तो मन में कितना प्रसाद, कितना आनन्द अनुभव होता है ....! यह बात शब्दों से नहीं, अनुभूति से ताल्लुक रखती है।

प्रकृति ने सभी ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति के लिए मनुष्य के चारों ओर अपनी देन बखेर दी हैं। जंगली बेरों में कच्ची गाजरों में नीम की निबौलियों में कैसा मधुर स्वाद होता है ! फूलों और कोमल पत्तियों का स्पर्श कितना सुखदायक होता है ! आम के बौर और जंगली गुलाब की महक कितनी आह्लादकारक होती हैं ! कोयल की कुहुक और पपीहे की रट कितनी कर्णप्रिय होती है, ठंडी बयार कितनी स्फुर्तिदायक होती है !

सादगी की प्रवृत्ति अनेक अनावश्यक परेशानियों से हमारी रक्षा करती है ऊंची-ऊंची काल्पनिक महत्वाकांक्षाओं से बचाकर यथार्थ की दुनिया में दिलचस्पी लेने का पाठ पढ़ाती है। सादगी से चित्त प्रसन्न और मन हल्का रहता है।

स्वास्थ्य के बारे में संदिग्ध मत रहिए

'ठंडी हवा से जुकाम हो जाएगा', 'दही की लस्सी बदन में दर्द कर देती है', 'मूली खाने से वायु बढ़ जाती है', इस तरह की शंकाएं मन में लाकर स्वास्थ्य की ओर से संदिग्ध मत रहिए। संदेह भी एक दुःखकारी भावना है। संदेह से व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के बारे में आश्वस्त नहीं रह पाता, तब वह एक छींक आ जाने से भी फ्लू हो जाने का खतरा देखता है। दरअसल ऐसा संदेह मन को परोक्ष रूप यही सुझाव देता रहता है–मैं अस्वस्थ हूं'।

अपने मन के अलावा स्वास्थ्य अच्छा न होने के सुझाव बाहरी माध्यम से भी मिलतें हैं जिनके प्रति हमें सतर्क रहना चाहिए। इस संदर्भ में अमेरिका के डा० शिण्डलर ने एक बड़े ही माकूल तथ्य की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने लिखा है :

"इतिहास में खराब तन्दुरुस्ती और रोगों के बारे में कभी भी इतनी उग्र चेतावनियां नहीं दी गई जितनी आज के युग में दी जाती है। रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन पर दवा बनाने वाली कम्पनियां, अपने माल की बिक्री बढ़ाने के लिए, इस ढंग का प्रचार करती हैं, श्रोताओं को ऐसे सुझाव देती हैं कि वे उनके प्रभाव में आकर अपने में भी रोग के लक्षण देखने लगते हैं, और फिर उन लक्षणों से छुटकारा पाने के लिए विज्ञापित औषधियां खरीदते हैं। जबकि ये औषधियां उन्हें तो क्या, असली रोगियों को भी लाभ नहीं करतीं। इसी तरह दैनिक समाचार-पत्रों एवं आवधिक पत्रिकाओं में छपने वाले विज्ञापन और लाक्षणिक चित्रसामान्य पाठकों के मन पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि उनके मन में काल्पनिक रोग पैदा हो जाते है अथवा वे समझने लगते है कि उन्हें भी शीघ्र अमुक रोग होने वाला है और इस तरह भावनाजन्य रूग्णता पैदा करने में यह विज्ञापनबाज़ी भारी हिस्सा ले रही है।"

सुझाव किस तरह व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है, इस बात का अनुभव एक डाक्टर के नातें मुझे तो प्रतिदिन होता है, किन्तु दो रोगियों पर सुझावों का जो नाटकीय प्रभाव हुआ, वह उल्लेखनीय है। मेरे एक रोगी को खांसी बहुत पुरानी पड़ गई थी, किसी औषधि से ठीक नही हो रही थी। मुझे यह संदेह हुआ कि उसे टी०बी० (यक्ष्मा) हो गई है। यों रोगी का सामान्य स्वास्थ्य कुछ बुरा न था। मैं उसे एक्स-रे क्लीनिक में एक्स-रे कराने ले गया। वहां के डाक्टर ने रिपोर्ट देतें हुए उस रोगी के सामने ही कह दिया–"तुम्हें टी०बी० हो गई है।" और उस डाक्टर की बात सुनकर रोगी पीला पड़ गया। उसे इतनी कमज़ोरी महसूस होने लगी कि सौ गज चलकर बस पकड़ने में भी उसने अपने को असमर्थ पाया। घर पहुंचने के लिए क्लीनिक के दरवाजें पर ही टैक्सी मंगवानी पड़ी।

दूसरे रोगी को भी इसी तरह एक्स-रे के लिए ले जाना पड़ा और एक्स-रे लेने के बाद जब उसे डाक्टर ने बताया कि "तुम्हारे फेफड़े बिलकुल साफ है, तुम्हें कोई बीमारी नहीं है", तो उसका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। क्लीनिक से निकलकर वह मुझे पास के ही एक बढ़िया जलपानगृह में खींचकर ले गया और वहां उसने बहुत बढ़िया भोजन मंगाए और वहां बैठे-बैठे ही वह विदेश-भ्रमण की योजना बनाने लगा।

किसी भी व्यक्ति में जब भावनाजन्य रुग्णता के कुछ लक्षण पैदा हो जाते हैं

और वह उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता–चाहे तो वह इस कारण ध्यान न दे पाए कि काम-धंधों में इतना व्यस्त रहता हो कि ध्यान देने की फुरसत ही न हो अथवा वह यह जानता हो कि यह सब मेरा वहम है–ऐसी दशा मे वह भावनाजन्य रोगी नहीं माना जाएगा। लेकिन जिस क्षण वह इन लक्षणों के जाल में फंस जाता है, उनके बारे में अधिक सोच-विचार करने लगता हैं और शारीरिक कष्ट अनुभव करने लगता है, उसी क्षण से वह भावनाजन्य रोगी बन जाता है।

मेरा एक रोगी बहुत बड़ी कम्पनी का मैनेजिंग डाइरेक्टर था। वह सीने में जब-तब काफी जकड़ाहट महसूस करता था, लेकिन उसने इस लक्षण की ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह इतना व्यस्त रहता था कि इस ओर ध्यान देने का उसे समय ही नही मिलता था। वैसे, इस जकड़ाहट से उसे कोई शारीरिक परेशानी या कष्ट नहीं था। एक दिन अपने किसी मित्र के साथ वह एक डाक्टर की क्लीनिक में पहुंच गया और संयोगवश अपनी जकड़ाहट के लक्षण का जिक्र कर बैठा। डाक्टर ने उसकी परीक्षा करके कहा, "यह दिल का दौरा पड़ने के लक्षण बन रहे हैं।" चिन्ता और परेशानी पैदा हो गई कि हर वक्त दिल के दौरे के बारे में सोचने लगा। काम-धंधा करना मुश्किल हो गया। मैंने उसे सलाह दी कि हृदय-रोग-विशेषज्ञ डाक्टर से अपनी परीक्षा कराएं। उसने एक नहीं, दो-तीन विशेषज्ञों से अपनी परीक्षा कराई और सबने यही बताया कि उसे दिल के दौरे का कोई खतरा नहीं है। लेकिन फिर भी वह कई मास बाद अपने को संभाल पाया।

इस उदाहरण से जहां भावनाजन्य रोगी की स्थिति स्पष्ट होती है, वहां यह बात भी सामने आती है कि चिकित्सक द्वारा गलत निदान या गलत सुझाव रोगी को कितनी बड़ी परेशानी में डाल देते हैं।

मनोवैज्ञानिकों का सुझाव है कि स्वास्थ्य-सम्बन्धी शंकाओं के निवारण के लिए यह एक अच्छा उपाय है कि साल में एक बार कुशल चिकित्सक द्वारा अपने शरीर की जांच करा ली जाए। यह उपाय पाश्चात्य देशों में भले ही कारगर रहता हो, लेकिन हमारे देश में ऐसा माहौल नहीं है कि यह उपाय कुछ सहायक हो सके। इसके कई कारण हैं।

पहली बात तो यह है कि यहां स्वास्थ्य के प्रति लोग इतने जागरूक नहीं हैं। स्वास्थ्य को लेकर लोग बड़े भ्रम और अज्ञान में पड़े हुए हैं। वे इस बात को सोच ही नही पाते कि साल में एक बार स्वास्थ्य-परीक्षा करके उन्हें आश्वस्त हो जाना चाहिए। शायद ही गिने-चुने लोग ऐसा करते हों।

दूसरे कुशल चिकित्सकों की सेवाएं हमारे यहां बहुत कठिनाई से मिलती हैं, क्योंकि अच्छे डाक्टरों की संख्या बहुत ही कम है और उनकी फीसें बहुत ऊंची हैं।

सामान्य जन की जिन सामान्य चिकित्सकों तक पहुंच होती है, वे रोगी की भावनात्मक दशा पर कुछ ध्यान नहीं देते क्योंकि इस सम्बन्ध में उन्हें स्वयं बहुत अल्पज्ञान होता है, या वे बिल्कुल ही कुछ नही जानते। रोगी के दवाखाने में आने पर वे उसे कुछ न कुछ रोग अवश्य बताते है। खेद है कि उनका ध्यान रोगी के हित की ओर न होकर अपनी आमदनी की ओर होता है।

अल्पशिक्षित अथवा कहीं कम्पाउण्डर का काम करके डाक्टर बने चिकित्सकों से ग्राम, कस्बे और शहर के बाज़ार भरे पड़े हैं और उनके यहां रोगियों की संख्या भी काफी रहती है। यदि रोगियों की इस भीड़ का सर्वेक्षण किया जाए तो आधे से अधिक रोगी भावनात्मक लक्षणों के शिकार मिलेगें। इन स्वयंभू चिकित्सकों में जो यौन रोग विशेषज्ञ बन गए हैं, उनकी तो पौ-बारह है। उनकी कमाई प्रशिक्षित विशेषज्ञों से कई गुणा अधिक होती है क्योंकि सेक्स के रोगी सबसे अधिक कल्पित विचारों के शिकार होते हैं। आशा है चिकित्सक बंधु इस तथ्य का उल्लेख करने के लिए मुझे क्षमा करेगें।

अपने स्वास्थ्य के प्रति शंकालु स्वभाव के व्यक्ति अपने काल्पनिक लक्षणों के लिए जब एक के बाद दूसरा चिकित्सक बदलते है। तो यह पातें है कि उनके रोग का निदान हरेक चिकित्सक भिन्न ही करता है। कोई पेट की ख़राबी बताता है कोई ख़ून ठीक नहीं कहता है। और दूसरा कोई नसों और पुट्ठो को कमजोर करार देता है। वस्तुतः ऐसी दशा में उन्हें स्वयं ही समझ लेना चाहिए कि उन्हें कोई रोग नही हैं लेकिन उनका शंकालु स्वभाव उन्हें सही दिशा में सोचने ही नहीं देता। कदाचित् कई ईमानदार और योग्य चिकित्सक अगर उनसे कहता है कि आपको बेकार का वहम हो गया है, आपको कोई बीमारी नही है, तो उन्हें उस चिकित्सक का यकीन नहीं होता। ऐसी हालत में उनकी दलील यह होती है कि जब वे बदन के किसी हिस्से में अकड़ाहट महसूस करते हैं, उन्हें दर्द उठता है, तबीयत गिरी-पड़ी रहती है, शरीर का सतसा खिंचा रहता है– तो क्या ये सारे लक्षण वहम से पैदा हो जाएंगे? ऐसे रोगियों की यही धारणा बन जाती है कि हकीम-डाक्टरों की पकड़ में उनका मर्ज नहीं आया।

ऐसे लोगों की यह एक आदत बन जाती है कि वे अपने कल्पित मर्ज की चर्चा हर मिलने-जुलने वाले से करते हैं उनकी हालत सुनकर लोग अपनी-अपनी राय भी देते हैं और यह बीस लोगों से मिली बीस तरह की सम्मति उन्हें और चक्कर में डाल देती है। कहना न होगा कि यह सब स्थिति स्वास्थ्य-सम्बन्धी अज्ञानता से पैदा होती है।

हमारे समाज में एक कहावत चरितार्थ है कि वहम की दवा लुकमान के पास

भी नहीं थी। लेकिन आज आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों ने इस कहावत को झूठा कर दिया है। यहां वहम से तात्पर्य भावनाजन्य रुग्णता का है। दुःखोत्पादक भावनाएं रुग्णता पैदा करती हैं और सुखोत्पादक भावनएं स्वास्थ्य और आरोग्य प्रदान करती हैं।

स्वास्थ्य के प्रति शंकालु और संदिग्ध रहने से सुखकारी भावनाएं उत्पन्न करने में बाधा पड़ती है। इसलिए कभी इस संदेह को पोषण मत दीजिए कि अपका स्वास्थ्य खराब है। हमेशा अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना कीजिए। अपने को पूर्ण स्वस्थ समझिए। फिर आप अनायास ही अच्छा स्वास्थ प्राप्त कर लेंगे।

शंका और संदेहशीलता केवल स्वास्थ्य के लिए ही हानिकारक नही है बल्कि यह जीवन के दूसरे क्षेत्रों में भी संक्रमण कर जाती है। व्यक्ति के स्वभाव में घुस जाती है और तब उसका आत्मविश्वास कम हो जाता है। वह निर्णय नही ले पाता। उसमें दृढ़ता और साहस भी कम हो जाते है।

काम में दिचचस्पी लेना सीखिए

समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जीवनयापन के लिए कोई न कोई काम-धंधा करना ही पड़ता है। न करे तो जीवनयापन करना कठिन हो जाता है।

कई बार कुछ व्यक्ति यह कहते पाए जाते हैं कि मौजूदा काम जो वे कर रं हैं, उसमें उनकी दिलचस्पी नही हैं, वे उसे पसंद नहीं करते हैं। लेकिन इस अरुचि का कारण यह होता है कि वे काम करते समय निराशावादी और खूसट विचारो में उलझे रहते हैं और भावनाजन्य रुग्णता के चंगुल में फंसने लगे होते है। ऐसे लोग जब एक काम छोड़कर कोई दूसरा नया काम पकड़ते हैं, तो वे उस काम को भी अपने मनोनुकूल नहीं पाते क्योंकि उस समय को ही पसन्द नही करते जबकि उन्हें काम करना पड़ता है।

यह बात सोलहों आने सत्य है कि खाली दिमाग शैतान का कारखाना होता हैं। व्यक्ति जब काम नहीं करता, खाली होता है, तब वह और अधिक दुःखोत्पादक भावनाओं का शिकार होता है। तबीयत ठीक नहीं रहती ऐसा बहाना करके तब ऐसे व्यक्ति प्रायः काम से बचने लगते है इसका नतीजा यह होता है कि उनकी आमदनी बन्द हो जाती है तथा एक नई दुःखोत्पादक समस्या उनके सिर पर लद जाती हैं।

काम में दिलचस्पी लेने के लिए यह जरूरी है कि आप काम के रोमांस और आनन्द को समझें। हर काम के अन्दर कुछ न कुछ खराबी होती है, चाहे काम कपड़े सीने का हो या अफसरी करने का, आप उसमें रोमांस अनुभव करिए, उसमें छिपे

आनन्द को खोज निकालिए। जब व्यक्ति अपना मन काम के रोमांस में लगा देगा तो उसके मन में दुर्भावनाओं की रेल चलनी आप ही बन्द हो जाएगी। यह मत भूलिए कि काम का एक सबसे बड़ा पहलू है, पुरुषार्थ। आप कोई भी काम करते हैं तो पुरुषार्थ करते हैं। पुरुषार्थी होना आपके लिए गर्व और प्रसन्नता की बात होनी चाहिए। निठल्लापन खुद व्यक्ति को अपनी नजरों में गिरा देता है। वस्तुतः काम में दिलचस्पी लेना भावनाजन्य रुग्णता का एक इलाज है।

अपने लिए कोई अच्छा शौक चुनिए

कुछ अच्छे शौक जीवन को धनी बनाने में भारी सहायक होते हैं। शौक का अर्थ ही दिलचस्पी के धंधे। अच्छा शौक वही है जिसमें रचनात्मकता होती है। बागबानी एक रचनात्मक शौक है। इसमें व्यक्ति कुछ नई चीज बनाता है। निर्माण करता है। शौक व्यक्ति की कल्पना शक्ति को बढ़ाता है। सुखी जीवन के नुस्खे में शौक का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यदि किसी व्यक्ति के पास कुछ अच्छे शौकिया काम नहीं है तो उसका फुरसत का समय उसके लिए भार बन जाता है। जिस तरह काम-धंधा आदमी के मस्तिष्क को कार्यरत रखता हैं, उसी तरह शौक भी एक सुखकर अनुभूति के साथ व्यक्ति के मन को अपने में उलझाए रखता है। इस सुखकर अनुभूति से सुखोत्पादक भावनाएं भी पैदा होती हैं।

वस्तुतः जिन लोगों के पास कुछ शौक नहीं होता; वे जल्दी ही दुःखोत्पादक भावनाओं के शिकार होते है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया है कि जिनमें उन्होंने किसी भावनात्मक रूप से पीड़ित व्यक्ति को कोई शौक अपनाने का सुझाव दिया और उस शौक के बल पर उसने अपने भावनाजन्य क्षोभ पर काबू पा लिया।

सन्तोष करना भी सीखिए

आज के युग में 'सन्तोष' की सम्पदा बहुत कम लोगों को प्राप्त है। आज प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की यह धारणा बन गई है कि उसका व्यक्तित्व किसी और ऊंचे मकसद के लिए है। वर्तमान में वह जो कुछ करता है, वह काम करने योग्य नहीं है। कम्पाउण्डर सोचता है, वह डाक्टर होने लायक है, क्लर्क सोचता है कि वह अफसर होना चाहिए था। एक छोटा परचूनी दुकानदार अपने में एक बड़े बिजनेसमैन होने की क्षमता देखता है। लोकसभा का एक साधाराण सदस्य अपनी बुद्धि को मिनिस्टर के लायक समझता

है, प्रतिदिन सिनेमा देखने वाला युवक अपने अन्दर एक ऊंचे अभिनेता के सब गुण पाता है। अखबार में काम करने वाला टाइपिस्ट स्वयं को मुख्य सम्पादक बनने का अधिकारी मानता है। ऐसे सभी व्यक्ति भावना-क्षोभ के शिकार रहते हैं।

महत्वाकांक्षा रखना, ऊंचे उठने की प्रवृत्ति रखना तो बुरा नही वरन् बहुत अच्छी बात हैं, लेकिन असन्तुष्ट रहना वास्तव में अच्छा नहीं होता। असन्तोष व्यक्ति के लिए दुर्भावना से अधिक कुछ नहीं होता। असन्तुष्ट व्यक्ति निश्चित रूप से भावनाजन्य क्षोभ का शिकार बन जाता है। कई भावनाएं अस्थायी होती हैं जैसे क्रोध। ये अस्थायी भावनाएं थोड़े समय तक अपना प्रभाव रखती हैं, लेकिन असन्तोष एक स्थायी भावना है जो मन पर छाई रहती है। फलतः असंतुष्ट व्यक्ति स्थायी रूप से भावनाजन्य क्षोभ का शिकार बना रहता हैं। इसके अतिरिक्त असंतोष एक अधिक व्याप्त भावना भी है जो व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ही असंतुष्ट रखती है। एक व्यक्ति जो अपने काम-धंधे से संतुष्ट नहीं है, वह अपने परिवार से भी असंतुष्ट रहने लगाता है। पड़ोसियों और मोहल्लदारो से असंतुष्ट रहता है, वह जमाने से ही असंतुष्ट रहने लगता हैं। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि असंतोष एक बुरी और बेकार की भावना है। असंतुष्ट व्यक्ति ज़िन्दगी में दिलचस्पी और चाव भी खो बैठता है।

किसी भी व्यक्ति में असन्तोष का भाव बहुत प्रकार से संक्रमण कर सकता है। अकसर ऐसे बालकों में असन्तोष की भावना अनजाने में ही भर जाती है जिन्हें पारिवारिक वातावरण अच्छा नहीं मिला होता; जहां पिता से माता असंतुष्ट रहती है और माता से पिता असंतुष्ट रहता हो, और दोनों आपस में लड़ते रहते हों।

कई व्यक्ति इसलिए असंतोषप्रिय हो जाते हैं कि उन्हें लगातार जीवन में दुर्भाग्यों का सामना करना पड़ता है। ऐसी हालत में हर चीज की ओर से उनकी तबीयत खट्टी होकर मन में खीझ और असन्तोष भर देती है।

बहरहाल व्यक्ति यदि थोड़ी सूझ-बूझ और जिम्मेदारी से काम ले तो संतोष प्राप्त कर लेना बहुत आसान है। इसके लिए दो उपाय विशेष रूप से काम मे लाने चाहिए :

1. प्रतिदिन होने वाली घटनाओं और रोज़मर्रा के जीवन में बातों और चीजों को पसन्द करना चाहिए, उनमें ऐसे घटक खोज निकालने चाहिए जो अच्छे लगे। यह वास्तव में चाह की बात होती है। यदि आपके मन में चाह है तो आप हरेक घटना और वस्तु में अच्छी बात खोज निकालेंगे और इन अच्छे लगने वाले घटकों से आपको एक भलेपन का अनुभव होगा। जहां रुचि पैदा हो जाती है, वहां अनायास ही सन्तोष मिल जाता है।

2. दूसरी युक्ति यह है कि अपनी जरूरतों और इच्छाओं को मत बढ़ाइए, क्योंकि इन बातों की कोई भी सीमा नहीं होती और नीति कहती है कि व्यक्ति की ज़रूरतें

उसकी क्षमता की सीमा में होनी चाहिए। जब जरूरतों के प्रति आदमी का मोह बढ़ जाता है तो वह अपनी क्षमता के बाहर जाकर उन्हें पूरा करता है। जैसे कोई व्यक्ति समझने लगे कि उसके लिए एक अच्छा कैमरा बहुत जरूरी है, लेकिन उसकी जेब कैमरा खरीदने की आज्ञा नहीं देती , तो वह कर्ज करके कैमरा खरीद लेता है। नतीजा यह होता है कि उसे और उसके परिवार को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। इस तरह सभी लोग कष्ट पाते हैं। और उनमें एक असन्तोष भर जाता है। कैमरा ले लेने के बाद वह फिर रेडियो को ज़रूरी समझने लगेगा और उसे लेने के लिए बेचैन रहने लगेगा। रेडियो की खरीदारी परिवार में और आर्थिक कष्ट पैदा करने लगेगी। और इसी तरह ज़रूरतें और उनके फलस्वरूप कष्ट बढ़ते चले जा रहे हैं और कष्ट पा रहें है। वस्तुतः इस रिवाज से परिवार पर ऐसा आर्थिक संकट आ जाता है कि उनकी असली जरूरतें तक पूरी नही हो पातीं।

मैं एक ऐसे सन्तोषप्रिय व्यक्ति को जानता हूं कि जिसके घर पर सोने के लिए पूरी खाटें नहीं थीं। वह जमीन पर बिस्तर लगाकर सोता था। किन्तु इस अभाव में उसने कभी असन्तोष नहीं अनुभव किया; बल्कि वह कहता था कि ज़मीन में सोने पर मुझे एक अलग आनन्द और रोमांस मिलता है। ब्रह्मचारियों और संतों की तरह भूमिशय्या का एक अलग आनन्द है। मुझे ज़मीन पर सोने में वही आनन्द आता है। वस्तुतः बिना कुछ खर्च किए हमें आसपास बातों और कथाओं में आनन्द के घटक खोजने चाहिए। इनसे जीवन सुखी बनता है। सुखोत्पादक भावनाएं मन में आती हैं संतोष वस्तुतः सुखी अनुभूतियों का खज़ाना है। हमें चाहिए कि संतोष प्राप्त करने की कला भी जाने।

मनुष्य से प्रेम और मानवता में विश्वास कीजिए

कई बार ऐसे व्यक्ति देखने में आते हैं जो राष्ट्रपति से लेकर अपने बगल के पड़ोसी तक को नापसंद करतें है; हालांकि राष्ट्रपति को उन्होंने कभी देखा नहीं होता है, और पड़ोसी के बारे में उनकी यह धारणा रहती है कि उससे न मिले होते तभी अच्छा था। ये वस्तुतः उस श्रेणी के लोग होते हैं जो किसी को पसन्द नहीं करते। उनके पास किसी के बोलने के लिए दो मीठे शब्द तक नही होतें। धन्यवाद देना या आभार प्रकट करना ऐसे लागों की आदत में शामिल नही होता। इस वर्ग के लोग यदि भावनाजन्य रूग्णता का शिकार रहें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होती क्योंकि वे किसी की कद्र करना नहीं जानते दूसरों का मूल्यांकन करने का उनका दृष्टिकोण गलत होता है। वे प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को छोटा समझते हैं।

स्पष्ट है कि ऐसी भावना में विचार-प्रौढ़ता तो होती ही नहीं, यह महज़ एक बचकानापन होता है। ऐसे लोग कूपमण्डूक से अधिक कुछ नही होते। कदाचित् वे इस बात को भूल जाते हैं कि उन्हीं की तरह दूसरे लोग भी समाज का एक अंग है। ऐसी बात नहीं कि यह नापसंदी का रुख उनके मन में सिर्फ बाहर के लोगों के लिए ही रहता हो वे माता में , पिता में, पत्नी में और बच्चों में भी दोष देखते हैं। उनकी निगाह पर छिद्रान्वेषण का चश्मा चढ़ा देखते है। दूसरों के दोष देखना एक काफी बुरी प्रवृत्ति है, क्योंकि जब किसी में दोष नजर आने लगते हैं तो हम उससे घृणा करने लगते है। घृणा करना निश्चय ही एक बुरी प्रवृत्ति है।

मनोवैज्ञानिको ने इस नापसन्दी को एक बहुत ही बचकानी प्रवृत्ति माना है; क्योंकि बालक बड़ा स्वार्थी होता है, वह अपना खिलौना, अपने हिस्से की मिठाई किसी दूसरे को नहीं देना चाहता। यदि कोई दूसरा बालक या बड़ा उसकी वस्तुएं लेना चाहता है तो वह उसे नापसन्द करता है। बच्चे अहंकेन्द्रित होते हैं, इसलिए नापसन्दी की भावना बचपन और स्वार्थपरता का लक्षण मानी गई है। विचारप्रौढ़ता और परिपक्वता में नापसन्दी का कोई स्थान नहीं होता। दूसरे की कद्र करना, मानवता से प्रेम करना एवं मानवीय क्रियाकलापों में दिलचस्पी लेना सुखी जीवन का एक प्रबल पक्ष हैं। सुखी जीवन के लिए इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देना बहुत ज़रूरी है। अपने अन्दर दूसरों की कद्र करने की आदत डालनी चाहिए और उनसे प्रेम बढ़ाने के लिए छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति को छोड़ना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरों से प्रेम करते हैं, उन्हें प्रतिदान में दुगुना स्नेह मिलता है। वे बहुत जल्दी लोकप्रिय हो जाते हैं। उनके चारों ओर आनन्द और प्रसन्नता के स्रोत फूट पड़ते है। उनका दृष्टिकोण व्यापक और विशाल बनता है। फिर तो सारा मानव-समाज ही उनका कुटुम्ब बन जाता है। ऐसे लोग निस्संदेह ही जीवन के धनी होते हैं।

खुशमिज़ाजी की सम्पदा प्राप्त कीजिए

जब हम मुस्करातें हैं तो दुनिया मुस्कराती है—लेकिन जब रोते हैं तो अकेले रोते हैं।

खुशमिज़ाजी एक ऐसा वरदान है, एक ऐसी अमोघ संजीवनी बूटी है जो चिन्ताओं, कष्टों और परेशानियों की भीड़ को छिन्न-भिन्न कर व्यक्ति के मन में प्रसाद और चमक लाती हैं। खुशमिज़ाजी की प्रवृत्ति व्यक्ति को विषम परिस्थितियों से लड़ने का साहस देते है।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूं जिसे मैंने अपवाद रूप से खुशमिज़ाज पाया;

परेशानियों और चिन्ताएं उससे खुशमिज़ाजी नहीं छीन सकी। वह जब भी किसी से मिलता, एक प्रसन्ननताभरी मुस्कराहट उसके चेहरे पर फूट पड़ती थी और वह फौरन कोई व्यंग्य-विनोदभरी बात छेड़ देता। वह व्यक्ति मामूली पढ़ा-लिखा था। उसका नाम किशन था। किशन ने खुशमिज़ाजी और प्रसन्नता के महत्व पर कोई साहित्य नहीं पढ़ा। लगता था कि प्रसन्न रहने का वरदान शायद उसे किसी देवता से मिला हुआ है। लोग उससे मिलकर खुश होते थे और चाहते थे कि वह उनके मध्य रहे। वह कदाचित् ही बीमार पड़ता था। भावनाजन्य क्षोभ तो शायद कभी उसे पास नहीं फटका।

किन्तु दुर्भाग्य से खुशमिज़ाजी सभी के हिस्से में नहीं आती। अनेक ऐसे मनहूस तबियत लोग होते हैं कि उनका सारा जीवन ही मनहूसियत में कट जाता है। वे न तो स्वयं प्रसन्न रह पाते हैं न दूसरों को खुशी दे सकते हैं। एक विचारक ने लिखा है कि ऐसे लोग वास्तविक खुशी के मौंको पर भी किसी न किसी मनहूसियत की कल्पना करने लगते हैं।

मनोविज्ञानवेत्ताओं का मत है कि हमें खुशमिज़ाजी का महत्व समझना चाहिए, और उसे जीवन में उतारने की विधि आनी चाहिए।

जब आप सुबह सोकर उठते हैं तभी से प्रसन्नता का 'मूड' बनाइए अपनी खिड़की के पास आकर खड़े हो जाइए। आकाश में फैलने वाली उषा-किरणों को देखकर मन में प्रसन्नता भरिए; दूर से आती हुई किसी के गीत गाने की आवाज, अथवा चिड़ियों की चहचहाहट में प्रसन्नता देखिए। यह महसूस कीजिए, आपका सवेरा प्रसन्नताभरे दृश्यों और भावों से ओतप्रोत है। इस प्रसंग को साधारण-सी बात समझकर मत टाल दीजिए; वस्तुतः इनमें जीवन के मूल्य छिपे होतें है। अपने मन को परेशानियों की कीचड़ से बाहर निकालने के लिए यह ज़रूरी है कि आप अपने मन में खुशनुमा बातों की एक 'ट्रेन' बना लें; क्योंकि यह एक तथ्य है कि आप अपने मिज़ाज में जितनी अधिक खुशी पैदा करेंगे, जितने अधिक खुशनुमा सुझाव पैदा करेंगे जिन्दगी में मनहूसियत से उतने ही दूर रहेंगे। भावनाजन्य क्षोभ की स्थिति आपको दबा नहीं पाएगी।

पारिवारिक जीवन में तो खुशमिज़ाजी और भी ज़रूरी होती है। जिस समय परिवार के सब लोग मिलकर बैठें, उस समय की बातचीत प्रसन्नता से भरी होनी चाहिए। फ्रांस के एक मनोवैज्ञानिक डाक्टर ने लिखा है कि "जब तुम परिवार के साथ भोजन की मेज पर बैठो, तो अपने लिए, बच्चों के लिए तथा और सदस्यों के लिए, और सबकी पाचनशक्ति के लिए कम से कम उस समय उस सहभोज को कष्ट-कथाओं, परेशानियों चिन्ताओं तथा भयपूर्ण चेतावनियां देने की सभा मत

बनाओ।" जिन परिवारों में ऐसा होता है, उनके अधिकांश सदस्य आगे चलकर विशेष रूप से भावनाजन्य क्षोभ के शिकार बन जातें है।

पराजय को स्वीकार करके विजय में बदलें

पराजय को स्वीकार करके उसे विजय में बदल देना वास्तव में एक कला है, जो बहुत कम व्यक्तियों को आती है। दरअसल पराजय को विध्वंसात्मक मत होने दीजिए, उसे निर्माणात्मक बनाइए। असफलता को सफलता की सीढ़ी मानकर चलिए तो फिर उसका दुःख नहीं व्यापेगा। मात हंसकर खाइए, उसका स्यापा मत मनाइए।

मैं बिहारीलाल के परिवार का डाक्टर था। परिवार बड़ा सम्पन्न और सम्भ्रान्त था। 'बांके-बिहारी' नाम से उनकी एक बड़ी व्यापारिक फ़र्म चलती थी। एक बार बिहारीलाल को व्यापार में भारी घाटा उठाना पड़ा, यहां तक कि घर की स्त्रियों के जेवर तक बेचकर घाटा पूरा करना पड़ा। लेकिन व्यापारिक क्षेत्र में उनकी फर्म की धाक और साख थी। इस व्यक्ति ने किस प्रकार घाटे की पराजय को स्वीकार करके उसे विजय में बदला वह वास्तव में बड़े जीवट का खेल था। अपने एक मित्र से उन्होंने कुछ रुपया कर्ज़ लिया और नया मकान बनवाना प्रारंभ कर दिया। बस फिर क्या था, हवा का रुख ही पलट गया। दिवाला निकलने की बात जो कुछ लोगों में इधर-उधर फैली थी, लोग उसपर अविश्वास करने लगे; क्योंकि नया मकान तो वही बनवाएगा जिसके पास पैसा होगा; दिवालिया नहीं बनवा सकता। नतीजा यह हुआ कि दिसावर से और व्यापारियों से उन्हें माल उधार मिलने लगा; उनकी फर्म फिर चलने लगी। जीवट से बिगड़ी बात बन गई।

ऊंची कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्र जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर अपना उज्ज्वल भविष्य बनाना चाहतें है, वे कई बार कोई प्रश्नपत्र खराब हो जाने पर परीक्षा छोड़ देते हैं और अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं। फिर अगले साल और अधिक तैयारी करके अच्छे दर्जे में पास होकर विजय प्राप्त करते है। स्पष्ट है कि वे हार स्वीकार करते हैं, उसे विजय में बदलते है।

समस्याओं का शीघ्र निर्णय कीजिए

व्यक्ति के जीवन में समस्याओं का कभी अन्त नहीं होता, वे लाज़िमी तौर पर जीवन में आती हैं, उनपर सोचना भी पड़ता है और उनका हल निकालने के लिए

भी प्रयत्नशील होना पड़ता है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति हर समस्या का सही हल निकाल ले यह ज़रूरी नहीं होता। उनका हल निकलने में गलती हो जाना बहुत स्वाभाविक बात होती है। बात को तय करने में ही घण्टों लगा देते हैं। अमुक सूट पर इस्त्री ठीक नही हुई है। कुर्त्ता-पाजामा क्या अच्छा लगेगा ? सूट के मैच की टाई नही है (!) अमुक व्यक्ति इस रंग का सूट पहने हुए था, वह जंच नही रहा था (!) और इसी तरह के बेमतलब के प्रश्न उनके मन में उठते रहते हैं। किसी यात्रा पर जाने की तारीख निश्चय करने में उन्हें महीनों लग जाते हैं। जब कि ये बातें त्वरित निर्णय के योग्य होती हैं। सामान्य बातें के शीघ्र निर्णय का अभ्यास हो जाने पर व्यक्ति में पेचदार मसलों पर भी सही और शीघ्र निर्णय लेने की बुद्धि आ जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ समस्याएं ऐसी भी होती हैं कि उनका हल सम्भव ही नही होता। उनपर माथापच्ची न करके उन्हें छोड़ देना चाहिए। दरअसल उन्हें छोड़ देना ही उनका हल होता हैं। जब उन्हे छोड़ दिया जाता है तो व्यर्थ के सोच-विचार से अनायास ही छुटकारा मिल जाता है, और व्यक्ति भावनाक्षोभ के घेरे में नहीं पड़ता।

एक स्त्री का पति शराबी था। अपनी आमदनी का अधिक भाग वह शराब में ही बर्बाद कर देता था। स्त्री पढ़ी-लिखी थी। उस बेचारी ने भरसक प्रयत्न किए कि पति महोदय की शराबखोरी छूट जाए, लेकिन वह सफल न हो सकी। बहुत ज़्यादा कोशिश करने पर सिर्फ इतना होता था कि पति महोदय चन्द दिनों शराब नहीं पीते, फिर उनकी कसम टूट जाती और फिर वे शराब में गर्क हो जाते थे। पत्नी को वर्षों इस समस्या में उलझे हुए हो गए। घर की दशा काफी खराब हो गई पैसे की कमी के कारण न तो बच्चों की अच्छी शिक्षा-दीक्षा हो पाती थी न उनका ढंग से पालन-पोषण हो रहा था। अन्ततोगत्वा उस गरीब महिला ने यही निर्णय किया कि शराबी पति की समस्या पर अब वह बिल्कुल विचार नहीं करेगी; इस समस्या को अपने दिमाग से ही निकाल देगी, क्योंकि उसका कोई हल नहीं है। ऐसा निर्णय लेने पर उसकी जीवनधारा ही बदल गई। पढ़ी-लिखी वह थी ही, कोशिश करके उसने अपने लिए एक नौकारी तलाश की, घर को संभाला, बच्चों की ओर ध्यान दिया। उसकी जो शक्ति समस्या में उलझे रहने पर व्यर्थ खर्च हो रही थी, वह अब जीवन-निर्माण में लगी। फलतः उसकी ज़िन्दगी की दिशा ही बदल गई बच्चों का पालन-पोषण ढंग से होने लगा, उनके चेहरे की उदासी चमक में बदल गई, वे नियमित रूप से स्कूल भी जाने लगे।

अतएव ऐसी समस्याओं का हल यही होता है कि उन्हें छोड़ दिया जाए।

वर्तमान को आनन्दमय बनाइए

प्रायः लोग वर्तमान से असन्तुष्ट रहकर भविष्य की आर बड़ी आशा से देखतें है, भविष्य को सुखमय बनाने की योजनाएं गढ़तें है। एक विचारक ने कहा हैं, "बीता हुआ काल मिथ्या हैं, आने वाला समय भ्रम है, केवल वर्तमान सत्य है।" और सचमुच वर्तमान क्षण ही आपके हैं; इन्हें ही आनन्दमय बनाइए, इन्हें ही संवारिए, संजोइए; इनका ही सदुपयोग कीजिए। आज से ही संवारिए, संजाइए; इनका ही सदुपयोग कीजिए। आज से ही नहीं, बल्कि अभी से, इसी क्षण से आननद अनुभव करना प्रराम्भ कर दीजिए। इस तथ्य को मत भूलिए कि व्यक्ति वर्तमान में जीता है।

प्रायः लोगों का स्वभाव होता है कि वे एक सुखमय भविष्य की कल्पना और प्रतीक्षा करतें रहते हैं। लेकिन वह भविष्य आता कब है ? व्यक्ति हमेशा वर्तमान मे रहता है, भविष्य तो हमेशा क्षितिज की तरह दूर ही दूर होता चला जाता हैं, और प्रतीक्षा हमेशा प्रतीक्षा ही बनी रहती है।

एक हाईस्कूल में पढने वाला विद्यार्थी इस बात की प्रतीक्षा करता है कि कालेज में पहुंच जाने पर मजा मिलेगा। कालेज में पहुंचने पर वह डाक्टर बनने का इन्तजार करता है और जब डाक्टर बन जाता है तो सोचता है कि शादी हो जाने पर और अपना निजी का घर बन जाने पर ज़िन्दगी का मजा मिलेगा। ...... और इसी तरह वह सोचता रहता है, प्रतीक्षा करता रहता है। अन्त में वह ऐसी उम्र और दशा में पहुंच जाता है जब उसे भविष्य की कल्पनाएं सुखद नहीं लगतीं। कदाचित् तब वह अपने भूतकाल की ओर देखता है और वह समय बुढ़ापे का होता है बढ़ापे में चूंकि वह ज़िन्दगी के दूसरे किनारे पर पहुंचने लगता है, इसलिए भविष्य रह ही नही जाता। तब फिर वह गुज़रे ज़माने की खूबियों की ओर झुकता है। उस काल में किए गए अपने कार्यों का मूल्यांकन करता है हम ऐसे थे, हमने यह किया था, वह किया था, वह भी क्या ज़माना था! लेकिन वह सब भूत होता है। बीता हुआ समय। और वे बीते हुए दिन किसी समय भविष्य थे, फिर वर्तमान हुए और अब बीतकर हमेशा के लिए चले गए।

लेकिन इस सब विवेचन का यह अर्थ नही है कि व्यक्ति भविष्य के लिए कोई योजना ही न बनाए, जीवन को सुनियोजित न करें आगे के लिए योजनाएं ज़रूरी होती हैं, लेकिन भावी जीवन की योजनाओं से इतना मत चिपट जाइए कि वर्तमान उपेक्षित रह जाए।

प्रायः शेखचिल्लियों जैसा भविष्य-चिन्तन हमें परेशानियों, चिन्ताओं और मानसिक उलझन में डाले रहता है और हम लगातार भावनाजन्य रुग्णता के शिकार बने रहतें है।

इतना ही नहीं, लोग परलोक की चिन्ता और कल्पना में अपने जीवन को रूखा और रसहीन बना लेते हैं। जब कि किसी को यह नही मालूम कि परलोक में क्या है, परलोक है भी या नहीं।

अतएव जीवन को धनी बनाने के लिए वर्तमान को सत्य समझिए। वर्तमान क्षण को खुशमिज़ाजी, प्रसन्नता, प्रौढ़ता के साथ बिताइए। वर्तमान में रस लीजिए।

मैं अपने एक मित्र की वह स्वाभाविक मस्ती नहीं भूल पता जब कि वह मित्र बाज़ार में चलते हुए भी सुखद प्रेरणाएं ग्रहण करता था। इन मित्र महोदय को संगीत से बड़ा प्रेम था। रेडियो में जब भी कोई इनकी पसन्द का गीत आता तो चाहे जैसा ज़रूरी काम कर रहे हों, सब कुछ छोड़कर रेडियो के पास जा बैठते। बाज़ार में चलते होते तो दुकान के पास रुक जाते। गीत का रस लेते फिर उसे गुनगुनाते कहते–"यार मजा आ गया! कैसा गाया है हेमन्तकुमार ने, क्या गला पाया है लता ने–बस तबियत बाग-बाग हो गई।" वास्तव में वह गीत सुनकर इतने रसविभोर हो जाते कि काम की थकावट भूल जाते थे। तबियत की परेशानी हटकर मन पर एक ताज़गी आ जाती थी। मन दुखकारी भावनाओं से हटकर सुखानुभूति में पग जाता था। वर्तमान को आनन्दमय बनाने का उनके पास यह सरल और सस्ता नुस्खा था।

जीवन में नवीनता लाइए

नयापन जीवन में एक प्रेरणा भरता है और जीवन को आकर्षक बनाए रखता है। नवीनता के लिए नई अनुभूतियों की मौलिक आवश्यकता होती है। नवीनता के अभाव में व्यक्ति का जीवन कोल्हू के बैल की तरह हो जाता है, जो सिर्फ एक घेरे में ही घूमता रहता है।

किसी व्यक्ति का पेशा चाहे कुछ भी हो, वह भले ही दुकानदारी करता हो, वकील हो या डाक्टर अथवा बड़ा अफसर हो सभी को अनिवार्य रूप से एक नये परिवर्तन की आवश्यकता होती है। द्वितीय महायुद्ध में जब मि० चर्चिल इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री चुने गए तो उन्होंने एक विशेष कार्य यह किया कि वह बड़े अफसर को, चाहे वह सेना का था, या नागरिक विभाग का, दो-दो मास की छुट्टी पर जाने का आदेश दिया। साथ ही यह भी घोषणा की कि इन छुट्टियों का उन्हें पूरा वेतन दिया जाएगा। उनकी इस घोषणा पर देश के कई नेताओं और राजनीतिज्ञों ने आपत्ति भी की। कई बड़े अफसरों ने यह भी कहा कि युद्ध इस समय बड़े नाज़ुक दौर में चल रहा है, अतएव अफसरों का छुट्टी पर जाना हित मे नही होगा। किन्तु मि० चर्चिल ने अपना मत नही बदला बल्कि उन्होंने साल में दो मास की छुट्टी पर जाना अनिवार्य

कर दिया। फलतः सभी अफसरों ने खूब सैर-सपाटे और आमोद-प्रमोद किया। और जब वे छुट्टियां समाप्त करके अपनी ड्यूटी पर लौटे तो उन्हें चर्चिल महोदय के इस कदम पर सार समझ में आया। लौटकर वे लोग दुगने उत्साह से काम पर लगे, काम में और ज़्यादा दिलचस्पी आने लगीं उनका उत्साह ताजा और नया हो गया।

कई बार भारी उत्तरदायित्व का काम संभालने वाले लोग जब कायदे-कानूनों के बन्धनों में बंधकर चलते हैं और बहुत रिज़र्व रहते हैं तो प्रायः उनका मन नवीनता और स्वच्छन्दता के लिए छटपटाने लगता है।

हम हिन्दी के एक ऐसे ख्यातनामा लेखक को जानते हैं कि जो तेरह भाषाओं के पण्डित हैं और भाषाओं के क्षेत्र में जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। वे जब बाह्य गंभीरता के जीवन से ऊब जाते हैं तो किसी दूसरे शहर में पहुंच जाते हैं और वहां बाजार में खड़े होकर दुकानों पर दो-चार मित्रों के साथ लेकर चाट-पकौड़ी और मिठाई खाते हैं। पान वाले की दुकान पर खड़े होकर खूब शीशा देखते हैं और फिर पान खाते हैं। स्वच्छन्द रूप से गलियों, मुहल्लों और बाज़ारों में घूमते हैं। उनका कहना है कि अफसरी बोझ जब जीवन को बासी बनाने लगता है तो वे इस प्रकार के सामान्य श्रेणी के आमोद-प्रमोद में बड़ी नवीनता अनुभव करतें है। उन दिनों वे अपनी कार में बैठकर किराये के इक्के-तांगों पर घूमते हैं।

वस्तुतः परिवर्तन के लिए नये मन्सूबे, नये प्रोग्राम और नई योजनाएं बड़ी ज़रूरी होती है। यहां हम बड़ी-बड़ी योजनाओं और मन्सूबों की बात भी नहीं कर रहे हैं। बड़ी योजनाएं खास-ख़ास मौके पर ही ठीक रहती हैं। यहां तात्पर्य रोज़मर्रा और निकट भविष्य की योजनाओं से है। जैसे आने वाली छुट्टी के लिए परिवार या मित्रों के साथ कहीं पिकनिक का प्रोग्राम। पास के किसी दूसरे कस्बे में घूम-फिर आने की योजना, किसी उत्सव या सांस्कृतिक प्रोग्राम में शामिल होना। ये सभी बातें मन को एक नई अनुभूति खुशी और उल्लास देती है। व्यक्ति उस प्रोग्राम की उत्सुकता से प्रतीक्षा करता। इससे भी छोटी-छोटी बातें नवीनता लाती हैं। यहां तक कि नये कपड़े पहनना, नई चीजें खरीदना तक नई प्रेरणा और अनुभूति देते हैं। हमारे तीज-त्योहार खास तौर पर प्रेरणा दायक होते हैं क्योंकि उनके लिए हम चाव से तैयारी करतें हैं। नये मास और नये सप्ताह की पत्र-पत्रिकाएं तो काफी नई अनुभूति पैदा करती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकतें हैं कि छोटी-छोटी नई बातें से ही हो, दैनन्दिन जीवन में थोड़ा परिवर्तन लाते रहना चाहिए; क्योंकि जीवन में एकरसता ऊब पैदा करने लगती है।

चिड़चिड़ेपन से दूर रहिए

आज हमारे सामाजिक जीवन का ढांचा कुछ इस तरह का बन गया है कि रोज़मर्रा के जीवन में जगह-जगह परेशानियों और विषम परिस्थितियों के ऐसे अवसर आतें हैं, जो बार-बार व्यक्ति को उत्तेजित और चिड़चिड़ेपन बना देते है। मन में भावनात्मक शान्ति और स्थिरता लाने के लिए यह ज़रूरी होता है कि हम इस उत्तेजना और चिड़चिड़ापन से बचें। किन्तु प्रायः इच्छा रहते हुए भी हम बच नही पातें, विचलित हो जाते हैं।

इस स्थिति पर काबू पाने के लिए थोड़ी अन्तदृष्टि से काम लीजिए। परिस्थितियों से उत्पन्न चिड़चिड़ापन जिस समय भी आपके मन में घुसने की चेष्टा करे, आप सतर्क हो जाइए, समझिए कि एक दुर्भावानारूपी शत्रु आपके मन में घुसना चाह रहा हैं। बस फौरन उसे बाहर धकेल दीजिए, उसके प्रवेश करने के दरवाज़े बन्द कर दीजिए। तत्काल उस परेशानी से दिमाग को हटाइए, कोई अच्छी बात सोचिए, मन मे यह निश्चय कीजिए कि हमें उत्तेजित नहीं होना हैं। दो-चार बार इस तरह स्थिति पर काबू करने से आप उत्तेजना से बचने के अभ्यस्त हो जाएगें। और इस विषय को अपनी एक बड़ी विजय मानिए यह महसूस कीजिए कि जीवन को सुखी बनाने की दिशा में आपने एक रचनात्मक काम किया है।

10. पारिवारिक पहेलियां

व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक रूप से रोगी बनाने में परिवार का सबसे बड़ा हाथ होता है। परिवार के झंझटों और परेशनियों से अक्सर लोग इतने ऊब जाते हैं कि इसके लिए गृहस्थी की संस्था ही बदनाम हो गई है। आमतौर पर लोगों को पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में यह कहतें सुना जाता है :

"संसार में सारे दुःखों की जड़ गृहस्थी है।"

"परिवार में रहने की बजाय आदमी जंगल में जाकर रह ले वह अच्छा है।"

और इसी तरह की बातों से प्रायः लोग पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अपना असन्तोष प्रकट करतें हुए पाए जातें हैं। आइए! इस पारिवारिक पहेली को भी मनोवैज्ञानिक कसौटी पर कसें–विश्लेषण करें और देखें कि कहां क्या खामी है।

जीवन पर परिवार का प्रभाव

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन पर उसकी पारिवारिक स्थिति और वातावरण का भारी प्रभाव पड़ता हैं। उसके व्यक्तित्व में उसके परिवार की छाप होती है। बहुत बचपन से ही उसकी विचारधारा परिवार में मिली शिक्षा और विचारधारा से प्रभावित होती है। परिवार एक ऐसा स्थान है जहां व्यक्ति के जीवन का सबसे बड़ा भाग गुज़रता है। किसी भी व्यक्ति में पूर्वाग्रह होने या समझते की प्रवृत्ति होना, उदारता होना या संकुचित वृत्ति होना, शिष्टता-नम्रता होना या उद्दण्डता होना, अपराधवृत्तियों का होना या परोपकारी भावनाएं होना– इन सभी में उसके परिवार के वातावरण का बड़ा भाग होता है बाहरी वातावरण और प्रभाव भी उसके भावनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में काम करते हैं किन्तु बहुत कम। क्योंकि बाहरी सम्पर्क में व्यक्ति देर से आता है। परिवार का प्रभाव तो उसपर बचपन से ही पड़ने लगता है।

जो लोग भावनाजन्य क्षोभ के रोगी होते है, उनपर सिर्फ बचपन का ही प्रभाव नहीं होता बल्कि जब वे बड़े होकर स्वयं परिवार के मुख्या बन जाते हैं तब भी पारिवारिक वातावरण उन पर प्रभाव डालता रहता है।

आप लोगों की तरह मनोवैज्ञानिकों को भी 'परिवार' संस्था से भारी शिकायतें हैं और इन शिकायतों को दूर करने का वे एक ही हल बताते है–व्यक्ति को प्रारम्भ से ही पारिवारिक रहन-सहन की शिक्षा देना। मनावैज्ञानिकों का यह कथन सौ फीसदी सही है। वस्तुतः यह एक विडम्बना ही है कि स्कूल-कालिजों में विद्यार्थियों को इतिहास, भूगोल राजनीति, विज्ञान, भाषा और अर्थशास्त्र पढ़ाए जातें हैं, किन्तु परिवार, जो कि जीवन का निकटतम विषय है, उस पर कोई शिक्षा नहीं दी जातीं लेकिन जैसे-जैसे मनोवैज्ञानिक मानव-मन की गुत्थियों को सुलझाता जा रहा है वैसे-वैसे इस बात की सम्भावनाएं बढ़ती जा रही हैं कि परिवार एवं जीवन के दूसरे तथ्यों के विषय में भी छात्रों को शिक्षित करने का संगठित प्रयत्न शीघ्र ही अमल में आएगा। और तब सम्भवतः व्यक्ति का जीवन एक बड़ी हद तक भावनाजन्य क्षोभ से मुक्त रह सकेगा। तब एक आम व्यक्ति का जीयन भावनात्मक रूप से अधिक सन्तुलित, सुव्यवस्थित और प्रसादपूर्ण होगा।

इस अध्याय में हम परिवार-सम्बन्धी भावनात्मक खामियों और क्षुब्ध वातावरण पर विचार करेंगे।

छिद्रान्वेषण और समालोचनाएं

एक-दूसरे के दोष निकालने तथा आलोचना करने की प्रवृत्ति प्रायः सभी परिवारों में पाई जाती है जो किसी भी व्यक्ति में भावना-क्षोभ पैदा करने के लिए काफी होती है। कुछ परिवार विशेष रूप से इस दुर्गुण के शिकार होतें है। वहां घर बाहर के हरेक व्यक्ति की आलेचना होती है। ऐसी आलोचनाएं अधिकांश रूप में माता या पिताओं द्वारा प्रारम्भ की जाती है। वे बच्चों से कहते पाए जाते हैं–"तुम इतने बड़े हो गए, तुम्हें काम करने की अक्ल नहीं", "तुम इतना भी नहीं सोच सकतें, तुम इतना भी नही कर सकतें"; उधर ये मां-बाप आपस में भी एक-दूसरे के दोष निकालकर एक-दूसरे को लांछित करते हैं, और गुस्से में भरकर झगड़ते हैं। तब वे एक-दूसरे से यही कहते पाए जाते हैं–"गुस्सा में नही तुम कर रहे हो, आपे से बाहर में नही तुम जा रहे हो।" लेकिन वे दोनों ही आपे से बाहर होते है, दोनों का ही सन्तुलन खोया हुआ होता है। ऐसे परिवार के बच्चों में शुरू से ही भावना-क्षोभ के बीज पड़ जातें हैं। साथ ही ये बच्चे अपने परिवार का आईना होते है। वे बाहर भी सब लोगों

के दोष निकालते है। उनकी किसी से दोस्ती नहीं निभ पाती, वे अध्यापकों में भी दोष देखते हैं। जब घर पर रहते हैं तो अपने भाई-बहनों में दोष निकालते रहते हैं।

मनहूस वातावरण

कई घरानों में ऐसा मनहूस वातावरण रहता है कि वहां कभी कोई प्रफुल्लता, प्रसन्नता नाम की चीज़ देखने और अनुभव करने में नहीं आती। मेरे अपने पड़ोस में एक बार एक ऐसा ही परिवार रहता था। उसमें कुल चार सदस्य थे–माता, बेटी, दामाद और एक बच्चा। सभी सदस्य आपस मे कभी रसोई में न तो बातचीत करते थें और न मिल-बैठकर कोई काम करते थे। बातचीत में रूखापन, तानाकशी और खिन्नता ही अधिक रहती थी। इस परिवार के साथ विचित्रता यह थी कि मां-बेटी अक्सर पड़ोसियों के घरो में जाती रहती थीं और वहां दूसरे लागों से खुब आमोद-प्रामोद की बातें भी करती थीं–किन्तु घर के वातावरण में कोई परिवर्तन नहीं ला पाती थी। इस परिवार के सभी सदस्य भावनाओं के दबाव से पीड़ित थे कहना न होगा कि ऐसे मनहूस वातावरण के परिवार में सभी ओर एक निराशा पूर्ण दृष्टिकोण रहता है। उपर्युक्त परिवार कभी फूला-फला नहीं। परिवार का बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया उसमें भी मनहूसियत आती गई। मित्रों को वह कुछ दे नही सकता था, उनके साथ मिल-बैठकर खेलता भी नही था। यह लड़का जीवन में पूर्ण रूप से असफल रहा और प्रौढ़ होने से पहले ही पागल होकर मर गया।

घर में शीतयुद्ध

खुले लड़ाई-झगड़े के स्थान पर कई परिवारे में शीतयुद्ध का वातावरण भी चलता रहता हैं। ऐसी हालत में परस्पर असहयोग और तानाकशी चलती है। कभी पत्नी पति को कहती है–"मुझे तो इस घर में कभी सुख मिला नहीं, सारी चीज़ें तकदीर से मिलती है, वही अच्छी होती तो यहां क्यों आती।" और इसी तरह पतिदेव के भी ताने चलते रहते हैं– "देख रे बिट्टू! तेरी अम्मा खाना-वाना बना रही है या नहीं, कहीं आज भी दफ्तर को देर हो जाए। हम तो वह दिन बड़ा भाग्यवान मानते हैं जिस दिन वक्त से खाना मिल जाए।" और इसी तरह पति-पत्नी कुढ़ते-जलते रहते हैं। और एक न एक डाक्टर के यहां भी जाता रहता है। डाक्टर का बिल भी लम्बा होता जाता है।

बाहरी व्यक्तियों का प्रभाव

नौकरों, मित्रों, पड़ोसियों और रिश्तेदारों द्वारा भी कई बार ऐसी स्थिति पैदा कर दी जाती है जो भावनाजन्य क्षोभ का कारण होती है।

कृष्णकुमार और कमला पति-पत्नी थे। दोनों आराम और प्रेम से रहते थें। शादी के दो साल बाद उनके एक लड़का हुआ। जब यह बच्चा छः मास का था तो उसे न्यूमोनिया हो गया। डाक्टर को बुलवाकर उसका इलाज शुरू करा दिया गया। धीरे-धीरे बच्चा ठीक होने लगा। एक दिन एक पड़ोसिन आई और बच्चे को देखकर कहने लगी, "कमला, तुम्हारे बच्चे को तो ऊपर की हवा (भूत-प्रेत) का असर मालूम पड़ता है। डाक्टर के इलाज से कुछ नहीं होगा; तुम अमुक स्याने को दिखाओं, तभी बच्चा ठीक होगा। डाक्टर लोग इसको नही समझते। मेरे लड़के का भी यही हाल हुआ था। डाक्टर ने काफी कोशिश की लेकिन बच्चा पूरे तौर पर ठीक नही हो सका।" यह बात सुनकर कमला परेशानी में पड़ गई हालांकि वह भूत-प्रेत में कोई खास विश्वास नहीं रखती थी, किन्तु फिर भी पड़ोसिन के सुझाव ने उसके मन में सन्देह पैदा कर दिया। वह यह अनुभव करने लगी कि बच्चे को डाक्टर के इलाज से कोई फायदा नहीं है। अपने पति से कमला इस बात को कहना नहीं चाहती थी। फलतः वह चिन्तित रहने लगी। पति से उसने इतना कहा की बच्चे को अभी कोई लाभ नहीं है। अगले दिन जब डाक्टर आया तो उसने बच्चे की परीक्षा करके बताया कि बच्चा पहले से बहुत अच्छा है और एक-दो दिन में बिल्कुल ठीक हो जाएगा। कमला को कुछ आश्वासन मिला। वह पड़ोसिन फिर आई और फिर उसने वही चर्चा छेड़ दी और बच्चे को देखकर कहा–"इसकी छाती पर जो सांस लेते समय गढ़ा पड़ता है। यही ऊपरी हवा की निशानी है। बच्चा झाड़-फूंक के बाद ही पूर्ण रूप से आरोग्य हो सकेगा।" कमला पर इस बात का गहरा असर पड़ा। वह काफी सुस्त और ग़मगीन हो गई। कई बार उसके पति ने उदास रहने का कारण पूछा तो कमला ने टालमटोल कर दी। कृष्णकुमार को यह सन्देह हुआ कि कमला कुछ बीमार रहने लगी हैं तब उसने एक दिन उससे डाक्टर के पास चलने को कहा। फिर तो कमला को अपने मन का संशय बताना पड़ा। कृष्णकुमार ने डाक्टर को सारी स्थिति बताई। डाक्टर ने स्वयं आकर कमला को समझाया कि बच्चा बिल्कुल ठीक हो चुका हैं और यह छाती के गढ़ा पड़ने वाली बात जो पड़ोसिन ने कही है, वह एक बेहूदी बात है, छोटी उम्र के सभी बच्चों के इसी तरह का गढ़ा पड़ता हैं कृष्णकुमार ने कमला को यह भी समझा दिया कि आगे से उस पड़ोसिन से इस विषय पर कोई बात न करे। तब कहीं जाकर कमला के मन का वहम निकला और वह स्वस्थ मन हो पाई अन्यथा वह काफी दिनों तक भावनाजन्य क्षोभ में डूबी रही थी।

इसी तरह दूसरे-दूसरे विषयों को लेकर अनेक बार बाहरी व्यक्ति परिवार के लोगों में चिन्ता और परेशानी के सूत्र छोड़ देते हैं और वे भावनाजन्य रुग्णता के शिकार बन जाते हैं। वस्तुतः ऐसी समस्याओं का उपाय सभी अवसरों पर सरल नही होता। लेकिन यदि भावनाजन्य उपद्रव्यों के मौलिक रहस्य को समझ लिया जाए तो उसके उपाय किए जा सकते हैं।

परिवार में प्रेम का अभाव

परिवार में स्नेह का अभाव होने पर लोग एक-दूसरे को पसन्द नहीं करते। ऐसा वातावरण निश्चित रूप से अनेक दुःखोत्पादक भावनाएं पैदा करता है सच तो यह है कि परिवार संस्था का आधार ही प्रेम होता है; किन्तु जब यह आधार ही नही होता तो आपसी सम्बन्ध कटु और छिन्न-भिन्न रहतें हैं।

ऐसे वातावरण में यहां तक देखने में आता है कि यदि पति या पत्नी में से कोई एक बीमार पड़ जाता है तो दूसरे को उसकी सेवा-सुश्रूषा तक में कोई दिलचस्पी नहीं रहती। और यह स्नेहहीनता का वातावरण जब बालकों के सामने एक उदाहरण के रूप में आता है तो भी स्नेह से वंचित रहते है। उन्हें न फिर अपने भाई-बहनें अच्छे लगते हैं न अपने मां-बाप। ऐसे परिवारों में कोई एक-दूसरे की कद्र नहीं करता, फलतः उनका जीवन सूखा और नीरस बन जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं वे अपनी माता अथवा पिता की तरह भावनाजन्य क्षोभ के घेरे में घिरते चले जाते हैं।

स्वार्थपरता और अहंकेन्द्रीयता

स्वार्थपरता और घमण्ड की भावना भी प्रायः अनेक परिवारों में देखने को मिलती है, और दुःखोत्पादक भावनाओं के लिए उत्तरदायी होती है। स्वार्थी पति प्रायः ही पत्नी और बच्चों की उपेक्षा करता है। वह अपने शौक पूरे करता है, बाकी लोगों का कोई ख्याल नहीं करता। साथ-साथ कहीं घुमने-फिरने जाना, पिकनिक के लिए जाना, या सिनेमा-सरकस में सब लागों का साथ-साथ जाना—यह सब उस परिवार के लिए स्वप्न के समान हो जाता है। ऐसी उपेक्षित पत्नियां उग्र रूप से भावनाजन्य क्षोभ की शिकार पाई जाती हैं। कभी हफ्तों तक उनका सर दुखता हैं। महीनों कमर के दर्द से परेशान रहती हैं। हर वक्त कमज़ोरी अनुभव करती है। वे कभी अपने को स्वस्थ अनुभव नहीं करती। कहना न होगा कि ऐसे परिवारों के बच्चे भी स्वार्थी

हो जाते हैं और मानसिक रूप से रोगी बने रहते हैं कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि पत्नी स्वार्थी होती है और पति उपेक्षित रहता है।

शिकायती वातावरण

किसी भी परिवार के लिए शिकायतों से भरा वातावरण काफी बुरा साबित होता है। शिकायतों का यह रोग कभी माता को होता है कभी पिता को, लेकिन अधिकांश में स्त्रियां ही इससे अधिक पीड़ित पाई जाती हैं। ये शिकायतें व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य के बारे में हो सकती हैं, घरेलू इन्तजाम के बारे में भी होती है।

मैं एक ऐसे सम्पन्न घर का कई वर्षों तक पारिवारिक चिकित्सक रह चुका हूं, जिसमें एक बुढ़िया मां के पास शिकायतों की लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त हर वक्त तैयार रहती थी। इस बुढ़िया को सबसे अधिक शिकायत अपने स्वास्थ्य से थी। उसका पेट, कमर और टांगें हमेशा दुखतें थे। सुबह उठते ही वह अपनी शिकायतें शुरू कर देती थी। उसे बहुतों से शिकायत थी, बेटे से थी, पति से थी, यहां तक कि घर की गाय-भैंसों तक से शिकायत थी यह बुढ़िया हर सप्ताह दूसरे-दूसरे डाक्टर, हकीमों का इलाज बदलती थी। उसे हर डाक्टर से भी शिकायत थी। स्पष्ट है कि वह भावनाजन्य रुग्णता का शिकार थी। वस्तुतः अपने पूरे चिकित्साकाल में भावनाजन्य क्षोभ से पीड़ित इतनी सजीव रोगिणी मैंने दूसरी नही देखी। यदि भावनाजन्य क्षोभ का विषय किसी कक्षा में पढ़ाया जा रहा हो तो इस बुढ़िया को 'माडल' के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था।

इस रोगिणी को कभी दुःखोत्पादक भावनाओं से छुटकारा नहीं मिला। उसकी इस शिकायती प्रवृत्ति ने पूरे घर को ही नरक बना दिया था। परेशान होकर उसके बेटा-बहु उससे अलग हो गए, क्योंकि बुढ़िया की तथाकथित बीमारियों के लिए उन्हें हर मास डाक्टर के लम्बे-लम्बे बिल चुकाने पड़ते थे।

चिन्ता और भय का वातावरण

एक लालाजी की साइकिल का चालान हो गया, और वह इस साधारण चालान से इतने चिन्तित हो उठे कि जैसे उनसे कोई कत्ल हो गया हो। बहुत लोग मामूमली-सी बातों को लेकर भारी चिन्ता में पड़ जाते है। इतना ही नहीं, वे एक से दूसरी चिन्ताओं पर कूदते रहते हैं। और रात भी चिन्ताओं के ताने-बाने में गुज़ार देते है।

इसी तरह कुछ लोग काल्पनिक भय से त्रस्त रहते है। मेरे एक पड़ोसी का बारह

वर्ष की उम्र का लड़का स्कूल में जाता था। इस लड़के को जब भी संयोगवश स्कूल से लौटने में देर हो जाती तो पिता यह भय करने लगते कि बच्चा कहीं किसी दुर्घटना का शिकार न हो गया हो, क्योंकि उसे मार्ग में दो भीड़भाड़पूर्ण सड़कें पार करनी पड़ती थीं। कई बार अधिक भय-विह्वल होकर वे उसे तलाश करने चल देते थे। वे उसे रोज संभलकर चलने की चेतावनी देते थे।

एक दुकानदार के पास एक डरावनी-सी शक्ल का ग्राहक आता था, उस समय दुकानदार दुकान छोड़कर चल देता था। उसे यह भय बना रहता था कि यह व्यक्ति झगड़ा करके मेरे छुरा घोंप देगा। कुछ लोगों को और भी अजीब भय हो जाते है। वे शंकित रहतें हैं कि सोते समय मकान की छत न गिर पड़े। बादल गरज रहे हैं तो वे भयत्रस्त हैं कि उनपर कही बिजली न गिर पड़े। अमुक रास्ते पर कल दुर्घटना हो गई है, उन्हें उस गली से नहीं जाना चाहिए।

मनोविज्ञान के हिसाब-किताब से चिन्ता और भय की यह प्रवृत्ति संक्रामक होती है। चिन्तित और भयातुर रहने वाले परिवार के मुखिया की पत्नी भी इस प्रवृत्ति का शिकार हो जाती है, और बच्चे भी उस सांचे में ढलने लगते हैं। धीरे-धीरे परिवार के सभी लोग भावना-क्षोभ के शिकार हो जाते है।

परिवार का अच्छा प्रभाव और वातावरण

पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में ऊपर हमने जिन खामियों की आलोचना की, ये बहुत-सी खामियों में से कुछ खामियां हैं। अलग-अलग परिवारों की स्थिति भी अलग-अलग ही होती है। इसलिए उनकी खामियां और वातावरण भी भिन्न होते हैं। सभी खामियों या अवांछित वातावरणों की कोई पूरी सूची नही बनाई जा सकती।

इन सभी खामियों से पाठक यह न समझें कि लेखक की मन्शा परिवार संस्था को मानसिक क्लेश की जड़ साबित करना है। ना ही मेरी मन्शा यह है कि नये विवाहित युवक-युवितयां परिवार को एक भय की दृष्टि से देखने लगें सच तो यह है कि परिवार संस्था से निराश होने की कोई बात नहीं है।

दरअसल इन समस्याओं का हल परिवार से भागना या किनाराकशी करना नहीं हैं। ज़रूरत सिर्फ इस बात की है कि परिवार में उन नियमों का परिचय करा दिया जाए, जिनसे प्रत्येक सदस्य भावना-नियन्त्रण सीख जाए। यदि आप यह बात कर गुज़रते हैं तो आपके परिवार का वातावरण बहुत खुशनुमा और स्वस्थ बन जाएगा। तब परिवार के सभी सदस्यों पर उसका स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। फिर आपका परिवार एक ऐसा मनोरंजक स्थल बन जाएगा कि प्रत्येक सदस्य उसका लाभ और आनन्द उठा सकेगा।

भावना-नियन्त्रण के नियमों का परिचय पुराने विवहित लोगों के लिए भी अपेक्षणीय है। किन्तु नवविवाहित जोड़ों के लिए यह काम अपेक्षाकृत आसान होगा।

घर (परिवार) से क्या अपेक्षित हैं!!

'अपना घर ' वह स्थान होता है, वह आश्रय होता है कि व्यक्ति चाहे जैसी निराशा और परेशान हालत में वहां पहुंचे, लेकिन हर प्रकार से वहां (अपने घर में) उसे आराम, शान्ति, सन्तोष और आश्वासन मिले। वहां चिड़चिड़ेपन का वातावरण न हो, दोषारोपण और छिद्रान्वेषण न हो, बेमतलब की आलोचना-प्रत्यालोचना न हो, किसी की निगाहों में तिरस्कार न हो, और सहानुभूति में कृपणता न हो। घर पर उसे एक आन्तरिक उठान और प्रेरणाप्रद उत्साह मिले।

ऐसे वातावरण की सृष्टि के लिए, परिवार के एक सदस्य की हैसियत से आप अपने रुख और सोच-विचार में खुशमिज़ाजी और शान्तिप्रियता लाइए।

परिवार के दूसरे सदस्यों को खुखमिज़ाज रहने की और शान्तिपूर्वक सोच-विचार करने की प्रेरणा दीजिए और यथासम्भव उनकी सहायता कीजिए।

परिवार के वातावरण में भावना-नियन्त्रण एवं परिपक्वता पैदा करने का नुस्खा काफी आसान है। उसकी नींव इस प्रकार रखिए : -

पारिवारिक रहन-सहन में यथासम्भव सादगी लाइए–एक अमेरिकन मानोवैज्ञानिक डाक्टर ने लिखा है कि–"आज अमेरिकनों के रहन-सहन का स्तर मशीनों के कारण ऊपर उठ गया है। बढ़िया मकान, मोटर गाड़ियां एक अच्छा टेलीविज़न सेट, रेडियो, फ्रिज, बढ़िया कैमरे, घड़ियां तथा दूसरे बिजली के उपकरणों के दैनिक जीवन में प्रवेश के कारणा जीवन आडम्बरपूर्ण हो गया है। इस आडम्बर ने आर्थिक दबाव डाला, उपर्युक्त वस्तुएं जुटाने में जो इनकी लगातार किस्तें अदा करनी पड़ती हैं, वे परिवार पर भारी आर्थिक बोझ बन जाती हैं। इसका फल यह हो रहा है कि उनका मूल्य चुकाने की परेशानियां आगे आ जाती हैं और उनसे मिलने वाली सुख-सुविधाएं पीछे पड़ जाती हैं। जीवन में सुख-सुविधाएं प्राप्त करने के तरीक आर्थिक रूप से महंगे नहीं होने चाहिए।"

अमेरिका की तरह ही भारत भी इस मशीनीकरण के चंगुल में है यहां भी दूसरे देशों की तरह आडम्बरप्ूर्ण रहन-सहन के कारणा आर्थिक दबाव बढ़ता जा रहा है।

कोई भी परिवार चाहे वह यूरोप का हो या भारत का, जब उसपर आर्थिक दबाव अधिक होता है, तो उसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता है। और यह संकट की स्थिति उसे अदबदाकर भावना-क्षोभ के क्षेत्र में खीचने लगती है।

पारिवारिक रहन-सहन में सादगी लाइए। परिवार के सभी सदस्यों का रुख किफायत होती है। इसलिए आप खुद भी सादे रहिए, पारिवारिक क्रियाकलापों में सादगी लाइए। परिवार के सभी सदस्यों का रुख किफायतशारी की तरफ मोड़िए, ताकि वे लोग अपनी ज़रूरतों को न बढ़ाएं। दूसरे, जरूरतें बढ़ने की कोई सीमा भी तो नहीं होती!!

आज के मशीनी युग के कारण नई पीढ़ी सादगी को पिछड़ापन मानती है। लेकिन ऐसा मानना वस्तुतः भ्रम है। व्यक्ति अपने विचारों और धारणाओं से पिछड़ता है, सादे रहन-सहन से नहीं युवक वर्ग को यह समझना चाहिए कि सादे रहन-सहन का महत्व कभी किसी युग में कम नहीं हुआ है, सादगी तो बड़प्पन और गौरव का लक्षण है। संसार के सभी महापुरूष सादामिज़ाज हुए हैं।

पारिवारिक कार्यों में तत्परता और सार्थकता भरिए—ज्योंही बच्चे समझदार होने लगें, उनके अन्दर यह भावना पैदा कीजिए कि 'परिवार' सभी की सुख-सुविधाओं का स्थान है और सभी का ये कर्तव्य है कि अपने क्रियाकलापों से परिवार को सुख-सुविधापूर्ण बनाएं। सभी अपनी जिम्मेदारियां निभाएं। किन्तु यह तभी सम्भव होता है। जब माता-पिता भी अपना उत्तरदायित्व निर्वाह करने में आगे रहते हैं कहना न होगा कि परिवार के छोटे सदस्यों के लिए माता-पिता के आचरण अनुकरणीय होते हैं। यदि पिता घुड़दौड़ों के मैदानों में, सिनेमा और क्लबों में व्यस्त रहता है तो फिर बच्चे भी दिन-दिन-भर अपने दोस्तों में ही गंवा देते हैं। सच तो यह है कि परिवार एक ऐसा स्थान है जहां माता-पिता, भाई-बहन एक-दूसरे के लिए उपयोगी होते हैं, सहायक होते हैं।

जब सर्दियों की रात में अंगीठी के पास बैठकर माता-पिता बच्चों को कहानियां सुनाते हैं, आमोद-प्रमोद की बाते करते हैं, सब लोग एक साथ कोई मेला देखने जाते हैं, तब सभी पारिवारिक सुख का अनुभव करते हैं। वे इस बात का अनुभव करते है कि सभी एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं। इस पारिवारिक तत्परता में हमें जागरूक रहना चाहिए।

इतना ही नहीं, मानवीय मूल्यों की शिक्षा भी हमें परिवार से मिलती है। परिवार ही जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को उदार या संकुचित बनाता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति सामाजिक व्यवहार भी सीखता है। बच्चे जब यह समझने लगते हैं कि जिस समाज में हम रहते हैं वह भी हमारा ही एक परिवार है—एक बड़ा परिवार—तब वे समाज के प्रति भी अपने दायित्व की ओर से जागरूक हो जाते हैं।

पड़ोसियों से जब हमारा व्यवहार स्निग्ध होता है, अपने परिवार की तरह हम उनके भी काम आते हैं, उनके दुख-सुख में हिस्सा लेते हैं, तो बच्चों में भी सच्ची

सामाजिकता का बोध आने लगता है। ये क्रियाकलाप उनमें समझदारी और मानवीय मूल्यों के बीज बो देते हैं।

ऐसे वातावरण में पले बच्चे बड़े होकर बहुत कम भावनाजन्य क्षोभ के शिकार होते हैं।

अनुकूल बनने की प्रवृत्ति

जिन लोगों के स्वभाव में लचकीलापन और परिस्थितियों के मुताबिक अपने को ढाल लेने की क्षमता होती है वे बहुत कम भावना-क्षोभ से पीड़ित होते हैं वस्तुतः सख्ती और हठीलापन ऐसे घटक हैं जिनकी मौजूदगी में भावना-क्षोभ बहुत जल्दी पनपता है इसीलिए हठी स्वभाव के लोग अधिक परेशान, चिन्तित और दुखी रहते हैं मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण से ऐसे तथ्य प्रकाश में आए हैं कि जिद्दी और हठी मिज़ाज के व्यक्ति अदबदाकर ऊंचे रक्तचाप के शिकार होते है।

लचकीलापन और परिस्थितियों के अनुकूल बन जाने का गुण भी व्यक्ति परिवार से ही सीखता है। सच तो यह है कि परिवार एक ऐसी पाठशाला होती है कि जहां व्यक्ति जीवन के पाठ पढ़ता हैं।

स्वभाव में सख्ती की प्रवृत्ति तभी आती हैं जब व्यक्ति अहंकेन्द्रित हो जाता है। तब उसमें दूसरों की कद्र करने का माद्दा नहीं रहता। और तभी वह जीवन में हार जाता है। हार को विजय में बदल देने की क्षमता उसमें नहीं आ पाती।

जिस परिवार में लोग दूसरे सदस्यों के हितों और सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते है, उन्हें सुखी बनाने में आनन्द अनुभव करतें है, तब निश्चय ही वे लोग त्याग प्रिय और सहनशील होतें है। परिवार के मध्य रहकर पढ़ा हुआ यह पाठ उन्हें भावी जीवन में सुखी बनाता है। और वे पराजय को उपलब्धियों में परिवर्तित कर लेते हैं। सहनशीलता, पारस्परिक सहयोग, समझदारी और अपने स्वार्थ को सर्वोपरि न रखने की प्रवृत्ति - ऐसे गुण हैं जो जीवन को उदार और सरस बनातें है।

पारस्परिक स्नेह

एक-दूसरे से स्नेह करने की मिसाल भी अपने परिवार में माता-पिता को ही पेश करनी होती हैं। जिन पति-पत्नी में परस्पर स्नेह होता है उन्हें अपने बच्चों को स्नेह सिखाने के लिए अलग से कोई प्रयत्न नहीं करने होते। उनके स्नेह-व्यवहार से बालक स्वयं ही स्नेह का पाठ पढ़ जाते हैं। और फिर सब मिलकर परिवार में

ऐसे स्निग्ध वातावरण की सृष्टि कर लेते हैं कि बाहर से आने वाले लोग भी उससे आप्यायित होते हैं।

लेकिन जिन माता-पिता के मध्य कटुता रहती है, निश्चय ही उनके बच्चों में भी कटुता संक्रमण कर जाती है। फिर जब उनकी शादी हो जाती है, तो वे अपनी पत्नियों को स्नेह नहीं दे पाते। जिसका फल होता है लड़ाई-झगडा और पारिवारिक क्षोभ।

अनुशासन मृदु होना चाहिए

इस बात में सन्देह नहीं है कि अनुशासन जीवन को सजाता-संवारता है। लेकिन यह भी एक तथ्य है कि जिस परिवार में सेना जैसा कठोर अनुशासन रखा जाता है, वहां से प्रसन्नता, स्वतन्त्रता और खुशमिज़ाजी का लोप हो जाता है, और सारा वातावरण एक रूक्षता से बोझिल रहता है यदि आप किसी अच्छे सुखी परिवार का अध्ययन करें तो देखेंगे कि वहां अनुशासन का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता। जब परिवार के बच्चों को हंसी-खुशी का वातावरण मिलता है तो अनुशासन की अधिकांश मांग स्वयं पूरी हो जाती है।

घर के बच्चों को अनुशासन की बुनियादी बातें– जैसे अपने से बड़ों का आदर करना, समय की पाबन्दी, ईमानदारी आदि अवश्य सिखानी चाहिए, किन्तु अनुशासन सम्बन्धी उपदेशों के पहाड़ उनके सामने नहीं रहने चाहिए। अनुशासन की यह भी मंशा है कि गलत कामों और कसूरों को माफ न किया जाए यदि बच्चे को ढंग से दण्ड दिया जाता है तो वह उस कसूर की पुनरावृत्ति नहीं करता है।

जिस प्रकार और दूसरी बातों की 'अति' हानिकारक होती है उसी तरह अनुशासन की अति भी मन और शरीर को तनावपूर्ण बना देती है। परिवार में जो बात आप लाना चाहतें है। उसका उदाहरण पहले खुद पेश कीजिए। यदि आप स्वयं समय पर काम करने के अभ्यासी हैं, दूसरों को आदर देने की प्रवृत्ति आपके अन्दर मौजूद हैं, आपका व्यवहार नम्र और शिष्ट है, तो यह सभी गुण आपके बच्चों में स्वयं आ जाएंगे।

परिवार के सदस्यों में विश्वास भरिए

परिवार के वयस्क सदस्यों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे, अपने को आश्वस्त और विश्वस्त अनुभव करें। अर्थात् वे यह समझें कि परिवार में वे पूर्ण

रूप से सुरक्षित हैं, उन्हें रुपये-पैसे सम्बन्धी कोई दिक्कत नहीं है। किन्तु सर्वोपरि बात यह है कि कोई भी बच्चा या बड़ा, यह न समझे कि परिवार में उसकी उपयोगिता या महत्व कम है। वस्तुतः आश्वासन और विश्वास की यह भावना मनोविज्ञान की एक बुनियादी मांग है जिसकी पूर्ति परिवार द्वारा होनी ही चाहिए।

परस्पर प्रसन्नता की कड़ियां जोड़िए

परिवार का प्रत्येक सदस्य जब प्रसन्नता और विनोद-भरे लहजे में एक-दूसरे से बातचीत करता है, तो परिवार का वातावरण आमोद-भरा, हल्का और स्फुर्तिदायक बना रहता है। पिता जब प्यार से लड़के की कमर थपथपाकर यह कहता है–'अरे मुन्नू, तू बड़ा शैतान है', माता लड़की से यह कहती है–'अब तो तेरे पिताजी को तेरी बनाई सब्जी ही ज़्यादा पसन्द आती है, खाना बनाने में तो अब तू बावर्चियों के भी कान काटने लगी है, तो बच्चों को एक आमोद-भरा आश्वासन और प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह जब सारा वातावरण आमोदमय रहता है तो रोज़मर्रा की परेशानियां, चिन्ताएं और समस्याएं मानो धुल जाती हैं, भावनाजन्य दबाव नहीं सताता। सदस्यों में पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ती है। ऐसे ही वातावरण से व्यक्ति को एक उठान (लिफ्ट) मिलता है।

मेरे एक मित्र बच्चों के स्कूलों की छुट्टियां होने पर अपने परिवार सहित गांव के घर पर रहने के लिए चले जाते हैं। एक बार मैं भी उनके साथ गांव चला गया। इस परिवार में मुझे अपवाद रूप से स्नेहसिक्त और प्रसन्नता-भरा वातावरण देखने को मिला।

मित्र महोदय जब घर में घुसते तो उनके चारों बच्चे 'पापा पापा' करते हुए उनसे चिपट जाते थे, कोई उनकी गोद में चढ़ बैठता, कोई पीठ पर चढ़ता। और वे किसी को चूमते, किसीके प्यार-भरा चपत लगाते। फिर वे अपनी जेबें खोलते, खेतों से लाए हुए बेर, पीलू, फालसे, इमली आदि चीज़ें बच्चों में बांटते थे। कई बार वे बच्चों के साथ गुल्ली-डण्डा खेलते थे। उन्हें गुलेल बना कर देते, और भी न जाने वे कितने कौतुक बच्चों के साथ करतें थे। सौभाग्य से उनकी पत्नी भी खुशमिज़ाज और सरल हृदय की थीं, और क्रियाकलापों में पूरा योगदान करती थीं।

कुल मिला कर इस परिवार का वातावरण हल्का और आमोद-भरा रहता था। खुशमिज़ाजी ने परिवार के सदस्यों को स्नेह की कड़ियों से जोड़ रखा था। मुन्नी की फ्राक अगर गीता पहन ले तो मुन्नी को शिकवा नहीं होता था। अगर राजू का जूता फट गया है तो पप्पू उसे अपनी चप्पलें पहनने को दे देता था। निश्चय ही नई पीढ़ी

के लिए इस भावना-क्षोभ से रिक्त सुखी जीवन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। इसका श्रेय अवश्य ही बच्चों के माता-पिता को जाएगा।

परिवार के लोगों के कार्यों को सराहिए

व्यक्ति जब किसी दूसरे के लिए कोई कार्य करता है, तो अपने काम की स्वीकृति और सराहना का भी अधिकारी होता है; किन्तु जब सराहना और प्रोत्साहन नहीं मिलता तो निश्चय ही काम करने वाला व्यक्ति हतोत्साहित हो जाता है।

कई बार लोग अच्छी-अच्छी नौकरियां इसीलिए छोड़ देते हैं कि उन्हें उनके कार्य की अपेक्षित सराहना अफसरों या मालिकों द्वारा नहीं प्राप्त होती। उनके कार्य का मूल्यांकन नहीं किया जाता।

कदाचित् लोग इस बात को नही समझते कि हमारे परिवारों में कार्यों की उपेक्षा की स्थिति प्रायः सर्वदा बनी रहती है। इस उपेक्षा की शिकार हमारी गृहणियां होती हैं। गृहिणी को अपने पति और अपने बच्चों से प्यार होता हैं। वह उनके लिए दिनभर घर में हाड़तोड़ काम करती हैं, किन्तु उस बेचारी को इस परिश्रम के लिए साल में एक बार भी शाबाशी या प्रोत्साहन के दो शब्द सुनने को नहीं मिलते। कदाचित् परिवार के लोग यह समझने के आदी हो जाते हैं कि यह सब यूं ही चलता है। इस जिम्मेदारी का निर्वाह सराहने योग्य होता है, लेकिन वे उस ओर कोई ध्यान नहीं देते। शायद पति और बच्चे समझते हैं कि खाना अपने-आप बन जाता हैं। बर्तन किसी स्वचालित मशीन से साफ हो जाते हैं झाड़ू अपने-आप घूमने लगती है। कपड़ों पर अपने-आप इस्त्री हो जाती है इधर-उधर पड़ी चीजें स्वयं उड़कर अपनी जगह पहुंच जाती हैं। वे इस बात को अनुमान लगाने के अभ्यासी नहीं होते कि इन सभी सुख-सुविधाजनक कार्यों के पीछे किसी कुशल व्यक्ति का हाथ है। सराहना की अपेक्षा करने वाले अनेक पति, पत्नी के अनेक कार्यों की उल्टी आलोचना करते पाए जाते हैं।

कहना न होगा कि प्रोत्साहन और सराहना के अभाव में गृहणियों के लिए घर की सार-संभाल शायद संसार का कठिनतम कार्य बन जाती है। पति महोदय जब इस प्रकार अपनी नौकरी से असन्तुष्ट होते हैं। तो 'सर्विस' छोड़ देते हैं। लेकिन गृहिणी इन कामों को इस्तीफा देकर कहां जाए (!) फल यह होता है कि प्रोत्साहन और सराहना के अभाव में बेचारी गृहिणी टूट जाती है। वह निराश और थकी रहने लगती है, और धीरे-धीरे भावनाजन्य क्षोभ के घेरे में जकड़ जाती है। आज की एक औसतन गृहिणी इसीलिए पीली, चिड़चिड़ी, हरी-थकी रहती हैं। कभी कमरदर्द, कभी सिरदर्द और कभी भूख न लगने की शिकायत करती है कि उसके कार्यों की सराहना नहीं की जाती।

परिवार में 'प्रजातन्त्र' लाइए

प्रजातंत्र का अर्थ है, पक्षपातरहित समानता। घर में सभी व्यक्तियों के साथ समानता का व्यवहार होता है। प्रत्येक के व्यक्तित्व को स्वीकार करके उसे यथोचित आदर, प्रेम दिया जाता है, उसके अधिकारों की रक्षा की जाती है, उसकी उचित आवश्कताएं पूरी की जाती हैं। तब परिवार का वातावरण सुख और सन्तोष-भरा रहता है। यहां मुझे एक बहुत उपयुक्त उदाहरण याद आ रहा है एक मोहल्ले के पार्क में दो-चार बच्चे खेल रहे थे। तभी वहां से एक बच्चे के पिता गुजरे उनके हाथ में आमों की कण्डीकी थी। उस बच्चे का एक साथी उससे कहने लगा, "राजू, देख तेरे पिताजी आम लाए हैं। जा अपने हिस्से के आम खाकर आ जाना। क्या पता मुन्नी ज्यादा आम खा जाए।"

किन्तु उस बच्चे ने घर जाकर आम खाने की कोई उत्सुकता नहीं दिखाई, बल्कि वह बड़े इतमीनान से कहने लगा–"पिताजी किसी को ज़्यादा आम नहीं देंगे, वे सबको बराबर हिस्सा देते हैं। मैं नहीं जाऊंगा, तब भी मेरे हिस्से के आम रखें रहेंगे।

बच्चे के इस उत्तर से यह बात स्पष्ट होती है कि उसे इस बात का पूरा यकीन था कि उसके पिता किसी के साथ पक्षपात नहीं करते है। उनके हाथ में उसके अधिकार सुरक्षित हैं। ऐसे प्रजातन्त्रीय वातावरण में पले बच्चे बड़े होकर दूसरों का भाग हड़पने की कोशिश नहीं करतें, उन्हें सिर्फ अपना स्वार्थ-साधन इष्ट नहीं होता। वस्तुतः घर के वातावरण को प्रजातन्त्रीय बनाने की बात बहुत कुछ परिवार के मुखिया पर निर्भर करती है। यदि आप अपने परिवार के मुखिया पर निर्भर करते हैं, तो देखिए कि आपके घर का वातायरण प्रजातन्त्रीय है या नहीं। आप किसी को कम और किसी को अधिक सुविधाएं तो नहीं देते हैं। घर का प्रत्येक सदस्य आपसे समान प्रेम और सहानुभूति पाता है या नहीं।

किसको कितना और क्या देना है इसके लिए घर में कोई निश्चित नियम लागू नहीं किए जा सकते। वह तो कुल मिलाकर मुखिया का व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि सबको उसमें विश्वास हो। तब आपके परिवार के व्यक्ति भावना-क्षोभ से पीडित नहीं रहेंगे।

11. यौन जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण

मनुष्य कदाचित् सदियों से एक अनिर्वचनीय आनन्द की खोज में है। वह उसे भक्ति, योग, उपासना आदि के आध्यात्मिक क्षेत्र में खोज रहा हैं; किन्तु उसे कुछ मिला नहीं, और मिलेगा या नहीं–इसका कुछ पतानहीं। अभी तक तो इस पथ के यात्रियों ने 'नेति नेति' ही कहा है। किन्तु सेक्स की अनुभूति अवश्य ऐसी है कि जिसमें एक अनिर्वचनीय अलौकिक आनन्द मिलता है। यदि ईमानदारी से देखा जाए तो संसार में सम्भोग-सुख से बढ़कर दूसरा सुख नहीं है। इसलिए सेक्स आदरणीय है; कद्र करने योग्य है।

सेक्स मनुष्य के आदर साहस, त्याग, सहनशीलता, स्नेह जैसे मानवीय गुण उत्पन्न करता है। प्रेमी-प्रेमिकाओ के बन्धन का आधार निश्चित रूप से सेक्स ही होता है। अपने प्रियतम के लिए प्रेमी अथवा प्रेमिकाओं ने कैसे-कैसे साहस, त्याग और बलिदान किए हैं, प्यार पर लोग किस तरह न्योछावर हुए हैं– इसके उदाहरण प्रत्येक युग में मिलते हैं। और यह सब सेक्स की देन है, इसलिए सेक्स आदरणीय हैं।

सेक्स ने मनुष्य में सौन्दर्यबोध पैदा किया, नृत्य और संगीत जैसी कलाओं का विकास किया। सेक्स पशु-पक्षियों में एक दैहिक क्रियामात्र भले ही हो, किन्तु मनुष्यों में वह मन और आत्मा को भी आप्यायित करता है। जीवन में एक आकर्षण और चाव भर देता है। इसलिए आदरणीय है।

अतएव जीवन में इसका सही मूल्यांकन करना चाहिए। जीवन में इसका ऊंचा स्थान है, अपना महत्व है। कहना न होगा कि ऐसे विषय को त्याज्य और अश्लील समझना, वर्जित और गर्हित करार देना, बुद्धि का दिवालियापन है। दूसरी ओर इसे सस्ता बनाकर मूल्य घटा देना भी इसका अपमान है। हीरे को कौड़ी समझ लेना कोरा अज्ञान है।

इस क्षेत्र में संयम बरतना चाहिए–किन्तु डरकर भागना या घृणा करना संयम नहीं है। ऐसा करना तो सेक्स का हीन प्रयोग कहा जाएगा। वरन् संयम का अर्थ है कि इसे संजोकर-संवारकर रखिए, मूल्यवान वस्तु बेदर्दी से खर्च नहीं करनी चाहिए। हीरे को सोने में जड़ा जाता है, कूड़े पर नहीं फेंक दिया जाता।

संयम का अर्थ और महत्व

ऊपर जो मैंने संयम बरतने की बात कही है, उससे मेरा तात्पर्य यौन- भावनाओं के दमन से नहीं है बल्कि संयम को एक व्यापक रूप में देखिए, इसके महत्व को थोड़ा गहराई से समझिए :

'मेरे पास लगभग 21-22 वर्ष की आयु का एक नवयुवक अपनी कुछ समस्याओं के समाधान के लिए आया। वह बी०ए० का छात्र था। लड़का कुशाग्रबुद्धि था। उसकी शादी नहीं हुई थी। किशोर काल की सेक्स-समस्याएं उसे कुछ परेशान कर रही थी, किन्तु वह कुछ व्यस्त नहीं था। वह मुख्य रूप से अधिक स्वप्नदोषों से चिन्तित था। प्रारम्भ में इसे वह एक रोग समझता रहा, बाद को कुछ अच्छा साहित्य पढ़ने पर यह बात उसके मन में स्पष्ट हो गई कि यह रोग न होकर एक स्वाभाविक शारीरक क्रिया है। इसी दर्म्यान उसे सेक्स के सम्बन्ध में कुछ आधुनिक विचारधारा के लोगों की कृतियां पढ़ने को मिलीं जिनमें इस बात की सिफारिश की गई थी कि काम के अधिक वेग और स्वप्नदोषों की ज़्यादती को रोक लेने के लिए आत्मरति का सहारा लेना चाहिए। आत्मरति यदि हीनभावना से न की जाए तो उससे कोई शारीरकि हानि नहीं होती, अपितु स्नायविक तनाव से राहत मिलती है। इस सुझाव के अनुसार उसने जब-तब आत्मरति का सहारा लिया और साथ ही यह विश्वास किया कि इस क्रिया से उसकी कोई हानि नहीं हो रही है। लेकिन फिर भी एक गहरा सन्देह उसके मन में बना रहा कि उसका यह कार्य स्वास्थ्य-सम्मत है या नहीं ?

वस्तुतः वह इसी समाधान के लिए मेरे पास आया था। इस नवयुवक की जिज्ञासा बड़ी मौलिक और युक्तिसंगत थी, वह इस सम्बन्ध में तथ्य और सत्य जानना चाहता था। मुझे उस नौजवान से सहानुभूति हो गई। मैंने उसे संयम का महत्व समझाते हुए बताया कि तुम्हारी यही आयु संयम का अभ्यास करने की है। इस संयम का जीवन में नैतिक मूल्य बहुत अधिक है–उसका रूप समझे आत्मरति द्वारा जब व्यक्ति तत्काल अपनी वासना अथवा तथाकथित तनाव का शमन कर लेता है, तो अपने मन पर उसका नियंत्रण बहुत ढीला पड़ जाता है। फिर तो वह तत्काल ही अपनी दूसरी गलत इच्छाओं की भी पूर्ति और शमन चाहने लगता है। कामक्षेत्र की वासना का इस प्रकार शमन उसके जीवन के सभी क्षेत्रों पर अंकुश-हीनता ला सकता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए उसे सामाजिक सीमाओं और मर्यादाओं के अन्दर चलना पड़ता है। सामाजिक जीवन में पग-पग पर सोच-विचार और भावनाओं के नियन्त्रण की आवश्कता होती है। यदि वह संयम करने में प्रशिक्षित नहीं है तो प्रत्येक क्षेत्र में असंयम बरतेगा। उदाहरणार्थ:– धन का खर्च संयम चाहता

है। पैसा हमेशा किफायतशारी से खर्च करना चाहिए, धन का अपव्यय जीवन में अनेक कष्ट पैदा करता है। एक मनोवैज्ञानिक ने यहां तक लिखा है कि जो लोग काम-भावनाओं को संयमित नहीं रख पाते, वे बेहद फिजूलखर्च करते हैं। स्पष्ट है कि धन के अपव्यय से व्यक्ति कष्ट पाता है और फिर भावना-क्षोभ का शिकार बन जाता है।

क्रोध भी एक ऐसा ही भावनात्मक आवेग है, जिसपर पूर्ण संयम होना चाहिए, अन्यथा क्रोधावेश में मनुष्य ऐसी भारी भूलें करता है। जिनपर उसे आजीवन पछताना पड़ता है। और वह सारी ज़िन्दगी भावना-क्षोभ से पीड़ित रहता है। यदि वह संयम करने में प्रशिक्षित है तो क्रोध पर काबू पा सकेगा।

'यौनाचरण की भूलें' असंयम का परिणाम होती है

यौन-क्षेत्र में व्यक्ति अनेक प्रकार के अपराध और भूलें करता है। और वे सभी प्रायः असंयम का परिणाम होती है। ऐसी बातों की झांकी हमें आए दिन मिलती रहती है; जैसे–कालेज में लड़के-लड़कियों में प्रेम हुआ–फिर शारीरिक मिलन–फलस्वरूप लड़की गर्भवती हो गई–फल हुआ समाज में फजीता–दोनों का जीवन कलंकित–लड़के या लड़की द्वारा आत्महत्या।

और कुमारी अवस्था में ही नहीं, शादीशुदा स्त्री-पुरूष भी जब पर-स्त्री से अथवा पर-पुरूष से सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, तो उनका भी लगभग यही दृश्य होता है। 'घर से भाग जाना, बलात्कार, स्त्री या पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेते है। तो उनका भी लगभग यही दृश्य होता है। स्त्री या पुरुष द्वारा एक-दूसरे की हत्या, तलाक आदि सभी गलत भावनाओं के परिणाम होते हैं। और इनके मूल में असंयम ही रहता है।

वैवाहिक जीवन में परिपक्वता

वैवाहिक जीवन में और वह भी विवाह के प्रारम्भिक दिनों में प्रायः सभी लोगों के समक्ष यौन-समस्याएं और कठिनाइयां आती हैं। यह स्थिति लगभग वैसी ही होती है जैसे साइकिल पर चढ़ना सीखनेवाला व्यक्ति शुरू-शुरू में गिरता हैं, चोटें खाता हैं, साइकिल पर अपने को साध नहीं पाता वैवाहिक जीवन में यौन-सम्बन्धों का भी यही हाल होता है। चूंकि दम्पती को पहले से कोई अनुभव नहीं होता और न इस क्षेत्र की जानकारी ही होती है; क्योंकि अश्लील और गोपनीय समझा जाने के कारण

इस विषय पर उन्होंने न कोई अच्छा साहित्य पढ़ा होता है, न उन्हें कोई शिक्षा मिली होती हैं। दूसरे शब्दों में वे इस ज्ञान से कोरे होते हैं इसलिए वे भूलें करते है। जिसके फलस्वरूप उन्हें असफलाताएं मिलती हैं–और वे अनभिज्ञ स्त्री-पुरुष इन असफलताओं को अपनी कमी या रोग मान बैठते हैं। वस्तुतः यहीं से उनके दुर्भाग्य का सूत्रपात होता है। ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी हीनभावना के शिकार हो जाते हैं। और फिर भावना-क्षोभ के चंगुल में फंस जातें है। वे समझने लगते हैं कि शायद उनकी गाड़ी हमेशा के लिए ही पटरी से उतर गई। जबकि वास्तविकता यह होती हैं कि साइकिल सीखनेवाले व्यक्ति की तरह ये बातें गिरने, पड़ने और चोट खाने के समान होती हैं। कालान्तर में जैसे साइकिल सवार बैलेन्स पर आधिपत्य कर लेता हैं, उसी तरह पति-पत्नी भी यौन-क्रिया के मास्टर हो जाते हैं।

वैवाहिक यौन-सम्बन्धों में सफलता प्राप्त करने के लिए जहां एक ओर ज्ञान और शान्ति की आवश्कता होती है, वहीं दूसरी ओर पति-पत्नी में प्रेम, सहानुभूति और सहयोग भी आवश्यक होता है। ऐसी समस्याएं जब दोनों पति-पत्नी बैठकर हल करते है तो स्थिति बहुत जल्दी सुधर जाती है।

सेक्स में एकाग्रता और केन्द्रीयकरण

जिस प्रकार दूसरे प्रत्येक कार्य में सफलता पाने के लिए चित्त की एकाग्रता और शक्ति के केन्द्रीयकरण की आवश्यकता होती हैं, यौन-जीवन में यह केन्द्रीयकरण और भी जरूरी होता है। अनेक यौन-असफल व्यक्तियों की असफलता का कई बार यही कारण होता हैं। वे शक्ति और मन को समग्र रूप से इस पक्ष में नहीं लगा पाते है।

कोई भी स्त्री या पुरूष जब केवल शारीरिक रूप से कामलोलुप होकर अपनी वासना की तुष्टि इधर-उधर करता फिरता है तो यह आचरण केवल भटना मात्र होता हैं, उसके चित्त में न तो एकाग्रता होती है न वह अपनी शक्ति का केन्द्रीयकरण ही कर पाता हैं। जिसका फल होता है 'असन्तोष' और यह असन्तोष फिर उसके जीवन के दूसरे-दूसरे क्षेत्रों को भी प्रभावित करता हैं वस्तुतः यह यौनाचरण का क्षेत्र ऐसा है जहां प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण सन्तोष, पूर्णानन्द और पूर्ण सफलता चाहता है; किन्तु वह वैसे आचरण और प्रयत्न नहीं करता।

जो पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे के प्रति वफादार होते हैं, जो परस्पर गहरा प्रेम रखतें हैं, जिन्हें एक-दूसरे के लिए त्याग करने में आनन्द आता है, जो पारस्परिक सहयोग के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, वे अनायास ही एकाग्रता और केन्द्रीयकरण प्राप्त कर लेते हैं, और वे अपने यौन-जीवन से पूर्ण संतुष्ट रहतें है।

12. वृद्धावस्था का समाधान

बढ़ता हुआ भावनाक्षोभ

यूं तो भावना-क्षोभ व्यक्ति को प्रत्येक आयु में सताता है, लेकिन जैसे-जैसे वह वृद्धावस्था के निकट पहुंचता जाता है, उसके क्षोभ की मात्रा बढ़ती जाती है।

विचारकों का कथन है कि वृद्धकाल जीवन का वह प्रशान्त किनारा है जहां व्यक्ति जीवन के तूफानी संघर्षों से पार होकर पहुंचता है। वस्तुतः इस स्थल पर व्यक्ति को बड़े शान्तिपूर्ण, प्रसन्न और गम्भीर भाव से उतरना चाहिए। किन्तु देखने में यह आता है कि वृद्धावस्था में पहुंचकर अधिकांश लोग निराशा, चिन्ता भय और उत्साहहीनता का पल्ला पकड़ लेते हैं। वे इस आयु को अच्छी तरह थाम नहीं पाते। इसका राज यह होता है कि उन्होंने अपनी पिछली आयु का कोई भी भाग अच्छी तरह नहीं थामा होता हैं। दरअसल उन्होंने जिन्दगी को घसीटा होता है, इसीलिए वे वृद्धावस्था को और भी नासमझी से घसीटते हैं।

एक दृष्टि से देखा जाए तो इस स्थिति के लिए कोई व्यक्ति-विशेष ही खास तौर से जिम्मेदार नहीं है। बल्कि पिछले सौ वर्षों में हमारे सामाजिक जीवन का ढांचा इस तेजी से बदला है कि एक सामान्य व्यक्ति अभी उसके अनुकूल नहीं बन पाया है। बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धियां और आविष्कार दो-दो विश्वयुद्ध, जनसंख्या की तेजी से वृद्धि राजनैतिक और आर्थिक अस्थिरता आदि ऐसे घटक हैं कि जिन्होंने जमाने में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया हैं। विचारकों का कथन है कि आगे आने वाले पचास वर्षों में और भी तीव्र परिवर्तन आने की आशा है।

आज के युग की वृद्धावस्था

और देशों की दशा जो भी हो, किन्तु हमारे भारत में आज का वृद्ध अपने को अरक्षित पाता है। अरक्षित का अर्थ यह है कि वह पैसे की कमी महसूस करता है। स्वास्थ्य की गिरावट से शंकित रहता है और भविष्य की ओर से चिन्तित रहता है। इस मानसिक ऊहापोह में घिरा वृद्ध निराशा और साहसहीन बन जाता है। इन दुःखोत्पादक भावनाओं के वशीभूत होकर आज का भारतीय वृद्ध भावना-क्षोभ का भारी शिकार बन गया है।

वास्तव में इन परिस्थितियों के लिए जहां व्यक्ति खुद अधिकांश रूप में ज़िम्मेदार हैं, वहां अधिकांश रूप से हमारा सामाजिक ढांचा और हमारी अर्थ-व्यवस्था भी उत्तरदायी हैं, जिसमें वृद्धों की उपेक्षा की गई है, उनके लिए कोई स्थान नहीं रखा गया।

कुछ सदी पहले भारत की सामाजिक व्यवस्था आदर्श थी। तब वृद्ध होकर व्यक्ति संन्यास ग्रहण कर लेता था। संन्यास आश्रम के लोग जनसाधारण द्वारा बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे उनके खानपान और दूसरी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था राज्य और समाज करता था। संन्यासी को भोजन देना, उसकी आवभगत और मान करना प्रत्येक गृहस्थ अपना पुनीत कर्तव्य मानता था। उधर संन्यासी भविष्य की ओर से आश्वस्त होकर आध्यात्मिक उपलब्धियों में लगा रहता था, अपने ज्ञान और अनुभव से वह समाज को सुखी और सम्पन्न बनाने की ओर प्रयत्नशील भी रहता था। ऐसी व्यवस्था तब पृथ्वी के किसी दूसरे देश में नहीं थीं।

वर्तमान दशा में समाधान का स्वरूप

आज का वृद्ध समाज अपनी समस्याओं का समाधान कैसे करे यह प्रश्न यहां विचारणीय है।

इस सिलसिले में सबसे पहली बात यह है कि वृद्धावस्था की ओर बढ़ने वाले व्यक्ति को अपना सामान्य साहस नहीं खोना चाहिए। उसे कभी यह नहीं समझना चाहिए कि अब उसके दुःखदारिद्रय् के दिन आ गए हैं। प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक स्थिति भिन्न होती हैं। किन्तु उसे इन स्थितियों से विशेष कुछ लेना-देना नहीं होता। मुख्य बात अपने दृष्टिकोण और अपना मूल्यांकन होता है। यदि वह स्वयं ही अपना मूल्यांकन घटाकर करता है, दृष्टिकोण सही नहीं रखता तो निश्चय ही वह दुःख-दारिद्रय् से घिरेगा, और भारी भावना-क्षोभ से पीड़ित रहेगा।

देखने की बात यह होती है कि इस अवस्था में पहुंचकर वस्तुतः व्यक्ति बहुत धनी होता है। उसके पास सारे जीवन के अनुभवों का खज़ाना होता हैं, विचार-प्रौढ़ता होती है। ये वस्तुएं ऐसी धन है कि जिनसे वह समाज को और अपने परिवार को सुखी कर सकता है, उनका मार्गदर्शन कर सकता हैं, उन्हें आश्वस्त कर सकता है।

वृद्धावस्था के मुद्दों को किस तरह हल किया जाए, आइए इसपर कुछ विस्तृत विचार करें।

आर्थिक संकट

यदि कोई व्यक्ति वृद्धावस्था के लिए धन जमा करके रखता है तो यह अच्छी बात है। लेकिन धनसंचय-मात्र से यदि वह यह समझ ले कि उसकी सारी समस्याएं हल हो गई तो ऐसा समझना वास्तव में भूल होगी। किन्तु ऐसी भूल लोग प्रायः करते हैं–परिपक्व अवस्था प्राप्त करके भी लोग ऐसे बचपने के आचरण करते देखे जाते हैं। जो लोग यह समझते हैं कि हमने वृद्ध आयु के लिए इतनी बड़ी रकम जमा कर ली है कि हमें अब किसी की परवाह नहीं हैं, तो ऐसे लोगों में एक मिथ्या घमण्ड आ जाता हैं और वे अपने दूसरे कर्तव्यों को भूल जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि परिवार के लोग उनसे तंग आ जाते हैं, और उनकी निगाह पैसे पर होती है। वे चाहते हैं कि जल्दी से बुड्ढा मर जाए तो धन मिले। वास्तव में ऐसी भावना आना एक निकृष्ट बात होती है, किन्तु इसमें दोष उस वृद्ध व्यक्ति के आचरण का होता है। जो बात-बात पर अपने बेटे-पोतों को डांटता-फटकारता रहता है, उन्हें बुद्धू और हीन समझता है। सदा अपनी और अपने जमाने की गाथा गाता है। यों वृद्धों के लिए प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक आदर-भावना होती है। बुजुर्गों की इज्जत करना एक सांस्कृतिक गुण है। जो थोड़े-बहुत अंश में प्रत्येक व्यक्ति में रहता है। किन्तु अहंकेन्द्रित वृद्धों की ऐसी ऊलजलूल बातें छोटों के मन से आदर और श्रद्धा खो देती हैं। इस तिरस्कार से प्रतिक्रिया में अनादर मिलता हैं। और तब ऐसे वृद्ध व्यक्ति जमाने को रोते है। छोटों को बेअदब और स्वार्थी समझने लगते हैं।

सच तो यह है कि अपने बुढ़ापे का निर्माण व्यक्ति को जवानी से ही शुरू कर देना होता है। जो लोग प्रारम्भ से ही छोटों को आदर, स्नेह और सहानूभूति देते हैं, छोटों के लिए आने को उपयोगी सिद्ध करतें हैं, अनिवार्य रूप से वे वृद्धावस्था में छोटों से आदर और श्रद्धा प्राप्त करते हैं। फिर तो अपने बुजुर्गों की आर्थिक सहायता करना भी छोटे अपना फर्ज समझतें हैं और उनकी सेवा करके प्रसन्न होते हैं।

कुछ विशिष्ट पेशे के लोगों के सामने वृद्धावस्था में आमदनी की समस्या स्वतः

हल होती रहती है, जैसे वृद्ध डाक्टर या हकीम, वृद्ध वकील, वृद्ध कारीगर, वृद्ध इंजीनियर, ऐसे ही दूसरे तकनीकी पेशे वाले लोगों का आमदनी समाप्त होने का प्रश्न नहीं आता। अनेक नौकरीपेशा लोग भी पेंशन अथवा दूसरे फण्ड्स के रूप में बहुत कुछ प्राप्त करते रहतें है। अलबत्ता शारीरिक परिश्रम करने वाले लोगों को यह सुविधा नहीं रहती, क्योंकि बुढ़ापे में श्रमशक्ति न रह जाने के कारण उनकी निजी कमाई नही हो पाती है। ऐसे लोगों को विशेष रूप से अपने को समाज और परिवार के लिए उपयोगी बनाना चाहिए। सूझ-बूझ से काम लेने पर प्रत्येक वृद्ध अपने लिए कोई न कोई ऐसा कामधन्धा चुन सकता है जो उसके आर्थिक लाभ का हो और समाजोपयोगी हो। बात सिर्फ बुढ़ापे को थमने की है। व्यक्ति में इस आयु को थामने की टेकनीक होनी चाहिए।

गिरता हुआ स्वास्थ्य

बुढ़ापे में स्वास्थ्य अवश्य ही गिरता है। खांसी, बलगम, वायु रोग या मधुमेह आदि बुढ़ापे की देन होते है–ऐसा मानना गलत है। आज भी हजारों 70-80 तथा इससे भी अधिक आयु के ऐसे वृद्ध मिलेंगे जिन्हें कोई रोग नहीं है, जो अपने सारे कामधन्धे स्वयं करतें हैं। अपेक्षा से अधिक शारीरिक परिश्रम भी करते हैं। और अब चिकित्सा-विज्ञान ने इतनी प्रगति की है कि बुढ़ापे में होने वाले रोगों की संख्या कम होने लगी है। यह ज़रूरत सही है के वृद्धावस्था में शरीर में जवानी जैसा उठान नहीं रह जाता, किन्तु वृद्धावस्था अपहिजों की अवस्था नहीं। कुछेक स्वास्थ्यनियमों के पालन से बुढ़ापे में स्वास्थ्य को स्थिर रखा जा सकता है। सर्वोपरि बात है 'मन की अवस्था'। खुशमिज़ाजी, विश्वास, जीवन के प्रति आस्था और आकर्षण यदि व्यक्ति में है तो फिर बुढ़ापे भी रंगीनी में कटता है। इस सिलसिले में लेखक के मित्र प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्यामलाल शर्मा ने अपने वृद्ध ताऊ की जीवन-सम्बन्धी गतिविधियों का जो अवलोकन किया है। वह यहां उल्लेखनीय है।

"इन बुज़ुर्गवार को जीवन के प्रति भारी आस्था थी। सत्तर वर्ष की आयु में भी सफेद चिकन का कुर्ता पहनते, सिर पर दुपल्ली लखनऊवा टोपी लगाते, बारीक धोती और पैरों में चमकता हुआ पम्प शू पहनते थे। आंखों को सुरमें से सजाते और जब बाहर निकलते तो कपड़ों पर इत्र लगा होता था। एक बार कुछ बच्चे उनकी बैठक के पास मिट्टी से खेल रहे थे। बुज़ुर्गवार ने पूछा–'बच्चों! क्या बना रहे हो?' बालक बोले–'बाबाजी! हम मिट्टी की दाल-रोटी बना रहे हैं। तब बुज़ुर्ग ने कहा–'अरे भाई, जब मिट्टी की ही बनानी है तो दाल-रोटी क्यों? हलुआ-पूरी बनाओ।' "

उनके इस वाक्य में जीवन के प्रति कितनी आस्था थी, जीने की कितनी प्रेरणा थी। वस्तुतः ऐसे ही लोग बुढ़ापे को अच्छी तरह थाम पाते हैं। वे यह नहीं महसूस करते कि अब वे बूढ़े हो गये हैं, उनका दम-खम खत्म हो रहा है, जीवन की सन्ध्या आ गई है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों का यह कथन है कि अपनी उम्र का हिसाब मत लगाइए, अपनी उम्र को भूल जाइए।

मृत्यु का भय

प्रत्येक प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है। प्रकृति के इस नियम को सब लोग जानते हैं। साथ ही प्रत्येक प्राणी अधिक से अधिक समय तक जीना चाहता है। कोई व्यक्ति, चाहे वह भोगी है या योगी, मृत्यु की कामना नहीं करता। वह जीवन चाहता हैं, अधिक से अधिक जीना।

मृत्यु के बाद की स्थिति चूंकि मनुष्य के समक्ष स्पष्ट नहीं है इसलिए वह मृत्यु से भय खाता है। लेकिन यह मानकर चलिए कि मृत्यु के बाद भी जीवन है। स्वर्ग-नरक का अस्तित्व भले ही न हो, किन्तु पुनर्जन्म के प्रमाण, पूर्ण रूप से मरकर जी उठने की घटनाएं, एवं आध्यात्मिक क्षेत्र-एवं दूसरे क्षेत्रों से यही निष्कर्ष निकला है कि मृत्यु के बाद भी 'कुछ' है। केवल अन्धकार नहीं है। वह 'कुछ' क्या है–उनके प्रति व्यक्ति को उत्सुक रहना चाहिए। कदाचित् वह एक नये लोक की सैर हो, एक अकल्पित-अतर्कित लोक जहां नई-नई अनुभूतियां हों, सब कुछ नया, सब कुछ अदृष्ट।

यह विश्वास, यह धारणा, मृत्यु-भय को हर लेती है। मृत्यु केवल जीवन-ज्योति का बुझ जाना नही हैं, अपितु एक परिवर्तन है–एक महानतम परिवर्तन और साथ ही सूक्ष्मतम परिवर्तन। मृत्यु भयावह नहीं है– उसमें भी एक अनुभूति हैं, सर्वथा एक नई अनुभूति।

वस्तुतः मृत्यु को भयावह बनाने वाली जड़वादी विचारधारा है, जिसमें आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं माना जाता, केवल शरीर है, शरीर के समाप्त होते ही वह व्यक्ति समाप्त हो गया। उसका जीवन समाप्त हो गया। यह शुद्ध भौतिक विचारधारा ही मृत्यु को भयावह बनाती है–तो फिर भयोत्पादक मार्ग को ग्रहण ही क्यों किया जाए?

वृद्धावस्था में प्रेरक कार्यकलापों को अपनाइए

इस बात को लेकर दो मत नही हो सकते कि पचास वर्ष की आयु पार करके व्यक्ति अधिक संजीदा, अनुभवी, दूरदर्शी और मंजा हुआ हो जाता है। उसने जमाना

देखा हुआ होता है। अपने इन गुणों और उपलब्धियों से उसे जीवन को सजाना चाहिए अपने मंजे हुए पन और गुरुगम्भीर अनुभवों का लाभ उठाना चाहिए इसके लिए :

"नई योजनाएं बनाइए–"अनेक व्यक्तियों ने इस आयु में नये काम सफलतापूर्वक अंजाम दिए हैं। अनेक लेखकों ने अपनी उत्कृष्ट रचनाएं पचास की आयु के बाद लिखी हैं।

"मित्रों का दायरा कम मत होने दीजिए," मित्र जीवन में रस घोलते हैं, वे बहुत अच्छे साथी होते हैं।

"दूसरों के साथ सहयोग की प्रवृत्ति बढ़ाइए," इससे जीवन में रचनात्मकता आती है।

"अपना रहन-सहन अच्छा और चुस्त रखिए, अपनी उम्र भूल जाइए। खुशमिज़ाज रहिए," इनसे जीवन में सजाव और संवार आता है।

"जीवन की घटनाओं को टुकड़े-टुकड़े करके मत याद कीजिए। जीवन को समग्र रूप से देखिए," इससे जीवन विशाल और महान दिखाई देगा।

"दुःखोत्पादक भावनाओं से दूर रहिए, सुखोत्पादक भावनाएं पैदा कीजिए," इससे आपका स्वास्थ्य खिला रहेगा।

13. उपसंहार

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कुछ बुनियादी मांगें होती हैं जिनकी पूर्ति उसके जीवन के सही दिशा में विकास होने के लिए जरूरी होती है। जब ये बुनियादी मांगें पूरी नहीं हो पातीं, तो उसका व्यक्तित्व विकसित तो होता है लेकिन जैसे उस विकास में बीच-बीच में गढ़े छूट जाते है; कमियां रह जाती हैं। बहुत बार लोग दुःखोत्पादक भावनाओं के चंगुल में इसीलिए फंसते हैं कि उनकी ये मांगे अपूर्ण रह जाती है।

प्रेम की बुनियादी मांग

प्रत्येक व्यक्ति के मन में दूसरों से प्रेम, आदर और सहानुभूति पाने की प्राकृतिक इच्छा रहती हैं।

प्रेम और सहानुभूति कई बार लोगों को बचपन से ही नहीं मिल पाती। परिवार में अधिक बच्चे होना, गरीबी, सौतेली मां, माता-पिता में लड़ाई-झगड़े रहना आदि अनेक ऐसी स्थितियां होती हैं जब बच्चे अनाहत और उपेक्षित रह जाते हैं। ऐसे बच्चे बड़े होकर समाज के प्रति प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं और उन्हें गलत भावनाएं घेर लेती हैं।

यदि किसी व्यक्ति की समझ में यह रहस्य आ जाता है कि वह प्रेम के अभाव से पीड़ित है तो इसका एक मात्र इलाज यह हैं कि वह दूसरों से प्रेम करे तो प्रतिदान में उसे दूसरों से स्वयं ही झोली-भरा प्यार मिलेगा। वह दुःखोत्पादक भावनाओं से बच सकेगा।

सुरक्षा की बुनियादी मांग

इस मांग के पीछे जीवन-रक्षा की प्रवृत्ति होती है। बहुत बार बचपन की दुर्घटनाएं, परिवार के लोगों द्वारा अधिकारों का हनन तथा ऐसी ही बहुत-सी बातें व्यक्ति के मन में असुरक्षित होने की भावना भर देती हैं तब वे इस तरह सोचतें है–कि उनकी नौकरी छूट जाएगी, रोजगार हाथ से निकल जाएगा, मुसीबत में कोई उनका साथ नहीं देगा, बीमारी में वे क्या करेंगे, कहीं कैन्सर या टी०बी० जैसे रोग न हो जाएं(!) वस्तुतः संसार में सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं होती। कौन कह सकता है किस समय क्या हो जाएगा? लेकिन गारण्टी न होते हुए भी लोग आराम से सौ-सौ वर्ष तक जीते हैं, स्वस्थ रहते हैं, रोजगार भी करते है। अतः असुरक्षा की भावना सिर्फ मिजाज़ होती है। जीवन के प्रति व्यक्ति को सतर्क अवश्य रहना चाहिए, लेकिन मिजाज़ में नही पड़ना चाहिए। आत्मविश्वास अथवा ईश्वर में विश्वास से इस दुर्भावना को जीता जा सकता हैं।

प्रोत्साहन और सराहना की मांग

कोई भी व्यक्ति जब दूसरे के लिए कोई काम करता है तो उसका मूल्यांकन और सराहना चाहता है। समाज में रहकर व्यक्ति सारे काम अपने लिए ही नहीं करता। सारा समाज सारे समाज के लिए काम करता है।

किसी काम के लिए जब आप किसी को धन्यवाद देते हैं, तो ये शब्द रस्मी नहीं होते, तब उन शब्दो में उस व्यक्ति के काम की सराहना छिपी होती हैं। सराहना की भूख प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं। यदि हम अपने कार्यों का मूल्यांकन चाहतें हैं। तो हमें दूसरे के कार्यों का मूल्यांकन भी करना चाहिए।

रचनात्मकता की मांग

बच्चे मिट्टी के घरौंदे बनाते हैं। गृहिणी घर के काम करती है। मिस्त्री कारीगरी करता है। लेखक पुस्तकें लिखता है। ऐसी ही और बहुत-से काम है जो रचनात्मक होतें है। ऐसे कार्य व्यक्ति को सन्तोष देते है कि उसने कुछ किया और उसकी रचनात्मकता की मांग पूरी होती रहती है। लेकिन जब इस प्रवृत्ति को किसी क्षेत्र में नही लगाया जाता तो रचनात्मकता की मांग उपेक्षित रह जाती हैं। तब व्यक्ति अपने को समाज का अनुपयोगी घटक समझने लगता है।

नवीनता की मांग

नई बातों, नये अनुभवों एवं नये काम करते रहने से नवीनता की मांग पूरी होती रहती है। इसके लिए दैनिक व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकालकर घूमना-फिरना, सिनेमा, पिकनिक आदि परिवर्तन करते रहना चाहिए। अन्यथा एकरस जीवन से मन ऊबने लगता है। प्रायः हमारे घरों की महिलाऐं इस ऊब और खीज का शिकार रहती हैं क्योंकि उन्हें प्रतिदिन चौका-चूल्हा और घर के काम धंधे में व्यस्त रहने के कारण परिवर्तन नहीं मिल पाता। और तब वे भावना-क्षोभ की शिकार बन जाती हैं।

स्वाभिमान की मांग

स्वाभिमान का तात्पर्य घमण्ड या दर्प से नहीं है, वरन् अपनी योग्यता, क्षमता और शक्ति को पहचानने से है। प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अपने गुण और विशेषताएं होती हैं। उनका उसे सही मूल्यांकन करना चाहिए और अपने को उपयोगी और योग्य व्यक्ति समझना चाहिए। जो लोग हीन भावना से पीड़ित रहते हैं, उनमें स्वाभिमान नहीं रह जाता। ऐसे व्यक्ति अपना आत्मविश्वास खो बैठते हैं। कदाचित् वे समझने लगते हैं कि व कोई काम नहीं कर सकते।

सामान्य व्यक्ति होना कोई बुरी बात नहीं है। संसार में अरबों पुरूष सामान्य ही हैं। सामान्य व्यक्ति के पास भी बहुत कुछ होता है। स्वयं अपनी नजरों में उठना व्यक्ति के चरित्र एवं व्यक्तित्व की बुनियादी मांग होती है। प्रसन्नताभरा स्वास्थ्य एवं जीवन के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए इस मांग का पूरा होना बहुत जरूरी है।

□□□